Year 7, Issue 25
Jan.-March 2010

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ७ - अंक २५, जनवरी-मार्च २०१०

नवोन्मेष

डा.रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'

करें सब सत्वर नवोन्मेष
अन्यथा करवट लेंगे शेष
मचेगा घर घर कोलाहल
प ेगा पीना हालाहल
करें नित कार्याकार्य विवेक
अनुक्षण ले सुशास्त्र का टेक
अन्यथा यह मनमानी चाल
चतुर्दिक लायेगी भूचाल
करेंगे गर मन मानावाद
सभी हो जायेंगे बर्बाद
अहो ! धर्मांकुश है अनिवार्य
नियमगत होते सारे कार्य
चाहते यदि सच में कल्याण
करें सब वेदों का सम्मान
अरे ! अपौरुषेय स्वरसार
वेद हैं वा मयी अवतार
वेद मंत्रों की अद्भुत शक्ति
दिव्य जीवन की है अभिव्यक्ति
स्वरित ज्यों ही होता है ओम्
स्वच्छ हो जाता सारा व्योम
अहो यह शाश्वत स्वतः प्रमाण
सर्वतः मूर्त्त निखिल कल्याण
वेद मंत्रों का सस्वर गान
दिलाता विविध ताप से त्राण
अतः किञ्चित संशय अपलाप
वेद विषयक होता है पाप
अगर यह बूझे, है सुखद भविष्य
अन्यथा महाप्रलय का दृश्य।

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
शिक्षा का माध्यम मातृभाषा	महात्मा गाँधी	३
हिन्दी	मैथिलीशरण गुप्त	३
गणितांक	सुधा गोयल	४
दीखते जैसे	डॉ. रागिनी भूषण	७
जीवित रहूँगी सदैव	ज्योति कालरा 'उम्मीद'	८
स्वतंत्रता के बाद हिन्दी की दशा एवं दिशा	महेन्द्र प्रताप सिंह	९
यदि हमारा विश्वास....	महात्मा गाँधी	१०
जीवटता	अक्षय गोजा	११
कब तक !	शैल अग्रवाल	१२
कामायनी से....	जयशंकर प्रसाद	१५
नारी	स्नेह ठाकुर	१६
हिन्दी की वैश्विक क्षमता	डॉ. मेहता नगेन्द्र सिंह	१७
हिन्दी....	मैथिलीशरण गुप्त	१७
हिन्दी जन-जन की भाषा है	स्नेह लता	१८
अपराजिता	कमल कपूर	१९
हाइकु	जवाहर इन्दु	२५
भारती के लाल	डॉ. ओम प्रकाश वर्मा	२६
राजभाषा अधिनियम की धारा ३ (३)	कृष्ण कुमार ग्रोवर	२७
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है	एस.के.जैन लौंगपुरिया	३१
माघ की एक सुबह	विजय सिंह नाहटा	३२
विडम्बना	राजीव रंजन	३३
संघर्ष	ममता खरे	३४
आदमी की आदमीयत	मधुप शर्मा	४२
राष्ट्रीय एकता की क ी : हिन्दी	कुमारी कमलिनी श. पशीने	४३
हिन्दी की प्रगति का आधार	हरिप्रसाद धर्मक 'विशाल'	४४
नवोन्मेष	डॉ. रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'	१अ
लहू के फूल	डॉ. श्याम सिंह शशि	४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00

डाक द्वारा By Mail................................$35.00

Website: http://Vasudha1.webs.com

e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

नया वर्ष अपने पंख पसार बहुत करीब आ पहुँचा है। वर्ष २००९ और २०१० के संधि-कगार पर ख ा यह समय जहाँ एक ओर दृष्टि-विहंगम की मुद्रा में अतीत को विदा दे रहा है वहीं दूसरी ओर नये आगत की जिज्ञासा के प्रति आतुरताभरी दृष्टि से उचक-उचक भविष्य में झाँक उसे तौलने का प्रयत्न कर रहा है।

१० जनवरी, हिन्दी दिवस के रूप में, ब ी उत्कंठा से विश्व के सभी हिन्दी-प्रेमियों की ओर टकटकी बाँध निहार रहा है। हम सभी हिन्दी प्रेमियों को अपने अथक प्रयासों से उसकी इस ललक-भरी दृष्टि में गौरव की चमक लानी है, हमें हिन्दी का झण्डा विश्व के कोने-कोने में फहराना है, हमें डंके की चोट पर गर्व से कहना है कि हिन्दी हमारी प्रिय भाषा है।

गणतंत्र दिवस पर 'वसुधा' की ओर से सभी देश-विदेश में बसे भारतीय और भारतवंशियों को कोटि-कोटि बधाई, साथ ही स्वतंत्रता दिलाने वाले, देश के उन सभी वीर सेनानियों को भाव-भीनी श्रद्धांजलि जिनके रक्त की एक-एक बूँद के हम चिर-ऋणी हैं; उनके ही बलिदानों से हम आज अपनी मातृभूमि और अपनी मातृभाषा के प्रति सर ऊँचा उठा वन्दे मातरम् के जयघोष से उसे वन्दित कर सके हैं।

भारतीय संस्कृति की अलख जलाये रखने के लिए भारतीय कोंसुलावास, आई.सी.सी.आर, एवं स्वर साधना के सौजन्य से, अनेकानेक सम्मानों, पुरस्कारों से विभूषित लब्धप्रतिष्ठित पद्मश्री शांति हीरानन्द, जिन्होंने सिद्धार्थ जैसे कलात्मक सिनेमा को भी अपनी मधुर आवाज़ से गुंजित किया, के समारोह का आयोजन किया गया। इस समारोह को सफल बनाने में भारतीय कोंसुलावास की कोंसुलाध्यक्ष माननीया श्रीमती प्रीति सरन, कोंसुल माननीय श्री सुरेन्द्र अरोरा, कोंसुल माननीय श्री एम.पी. सिंह एवं स्वर साधना के श्री जय भावसार, श्रीमती नेहा भावसार, श्रीमती ममता भावसार व कोंसुलावास तथा स्वर-साधना के अन्य पदाधिकारियों का बहुत ब ा योगदान था। भारतीय संस्कृति के प्रति सबका उत्साहपूर्ण लगाव सराहनीय है। वसुधा की ओर से सभी को साधुवाद।

१४ जनवरी को आदरणीय, अनुकरणीय एवं प्रिय गुरुजी, अनन्तश्रीसमलंकृत श्रीतुलसीपीठाधीश्वर, महाकवि, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वधिालय चित्रकूट के कुलपति, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामीजी की साठवीं जन्म वर्षगाँठ पर ठाकुर साहब व मेरी ओर से अनेकानेक मंगलकामनाएँ। व्यक्तिगत रूप से उन्होंने जो हम दोनों को अपना कृपा-पात्र बनाये रख अपना स्नेह-भाजन बनाये रखा है उसके तो हम आभारी हैं ही, पर साथ ही जो उन्होंने अपनी भक्तिमयी सशक्त लेखनी से 'वसुधा' को समृद्ध किया, उसके लिए वसुधा उनकी आभारी है। उन्होंने आध्यात्मिकता की परम पुनीत परिधि से, जिस दिव्य ज्योति द्वारा, साहित्य को प्रकाशित किया है और समाज को परिमार्जित किया है, उसके प्रति हम नत-मस्तक हैं। इस शुभअवसर पर, उनके शतशतायु होने की हृदय से कामना करते हुए सादर, सस्नेह नमन।

वसुधा ने अपने प्रिय रचनाकारों व प्रिय पाठकों के सहयोग से अपने जीवन के छः वर्ष पूरे किये हैं। इन दोनों ही वर्गों ने उसके शिशुकाल को आनन्दमयी किलकारियों से गुंजित किया है। वसुधा इन दोनों की ही आभारी है कि इन्होंने उसे अपने स्नेह-पाश में बाँध, उत्साहित व प्रोत्साहित कर आज इस ठोस धरातल पर ख ा कर दिया है।

वसुधा एवं सद्भावना हिन्दी साहित्यिक संस्था के तत्वावधान में सम्पन्न 'हिन्दी हीरक जयन्ती' वर्ष के उपलक्ष्य में 'काव्य हीरक' का प्रकाशन, इसके रचनाकारों - श्री जगदीश चन्द्र शारदा शास्त्री, डॉ. मौना कौशिक, श्री गोपाल बघेल, श्रीमती श्यामा सिंह, श्री रमन अग्रवाल व श्रीमती स्नेह ठाकुर - की, हिन्दी के प्रति निष्ठा का प्रतीक है। मेरा सौभाग्य है कि इसका संकलन व संपादन कर माँ सरस्वती के पावन-पुनीत चरण-कमलों में मैं सब रचनाकारों की ओर से साहित्य-सुमन अर्पित कर सकी।

नव वर्ष के लिए सभी आत्मीय-जनों की, वसुधा, मेरे परिवार व मेरे प्रति शुभकामनाओं ने हृदय अभिभूत किया। सभी शुभचिन्तकों, आत्मीय-जनों द्वारा नव वर्ष हेतु प्रेषित की गई मंगल-**कामनाओं के लिए परिवार-सहित हृदय से आभारी हूँ। मंगल-कामनाएँ ही जीवन को अदम्य साहस व उत्साह प्रदान करने में, असाध्य को साध्य बनाने में संजीवनी बूटी का कार्य करती हैं। यह ब` सौभाग्य की बात है कि आप सभी प्रिय हितैषियों का अपरिमित आदर-प्यार-आशीषें मिलीं। ईश्वर से प्रार्थना है कि ये पारस्परिक सद्भावनाएँ अक्षत रहें।**

सरस्वती माँ व ईश अनुकम्पा से तथा आप सब प्रियजनों की मंगल-कामना से मेरी दो पुस्तकें 'संजीवनी' आलेख संग्रह व 'उपनिषद्‌ दर्शन' प्रकाशित हुए हैं।

नव वर्ष विश्व के लिए मंगलमय हो, इस शुभ कामना के साथ, सस्नेह, स्नेह ठाकुर

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा

महात्मा गाँधी

(बिहार छात्र सम्मेलन, भागलपुर में अध्यक्ष-पद से १५-१०-१९१७ को दिया गया भाषण)

'मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह स्वदेश-भक्त कहलाने लायक नहीं। बहुत-से लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि हमारी भाषा में ऐसे शब्द नहीं, जिनमें हमारे ऊँचे विचार प्रकट किए जा सकें। किन्तु यह कोई भाषा का दोष नहीं। भाषा को बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। एक समय ऐसा था जब अँग्रेजी भाषा की भी यही हालत थी। अँग्रेजी का विकास इसलिए हुआ कि अँग्रेज आगे बढ़े और उन्होंने भाषा की उन्नति की। यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अँग्रेजी के ज़रिये ही हम अपने ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं और उनका विकास कर सकते हैं, तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे। जब तक हमारी मातृभाषा में हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाए जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिलेगा।

तुलसीदास जी अपने दिव्य विचार हिन्दी में प्रकट कर सके थे। रामायण जैसे ग्रंथ बहुत ही थो` हैं। गृहस्थाश्रमी होकर भी सब कुछ त्याग कर देने वाले महान् देश-भक्त भारत-भूषण पण्डित मदनमोहन मालवीय जी को अपने विचार हिन्दी में प्रकट करने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। पण्डित जी का अँग्रेजी भाषण चाँदी की तरह चमकता हुआ कहा जाता है किन्तु उनका हिन्दी भाषण इस तरह चमका है जैसे मानसरोवर से निकलती हुई गंगा का प्रवाह सूर्य-किरणों से सोने की तरह चमकता है।

मुझे अँग्रेजी भाषा से वैर नहीं है। इस भाषा का भण्डार अटूट है। यह राजभाषा और ज्ञान की निधि से भरी-पूरी है। फिर भी मेरी यह राय है कि हिन्दुस्तान के सब लोगों को इसे सीखने की ज़रूरत नहीं। किन्तु इस बारे में मैं ज़्यादा नहीं कहना चाहता। विद्यार्थी अँग्रेजी पढ़ रहे हैं, और जब तक दूसरी योजना प्रचलित नहीं होती और आज की शालाओं में परिवर्तन नहीं होता, तब तक विद्यर्थियों के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं। इसलिए मैं मातृभाषा के इस विषय को यहीं समाप्त कर देता हूँ। मैं इतनी ही प्रार्थना करूँगा कि आपस के व्यवहार में और जहाँ-जहाँ हो सके वहाँ सब लोग मातृभाषा का ही उपयोग करें, और विद्यार्थियों के सिवा जो महाशय यहाँ आये हैं, वे मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का भगीरथ प्रयत्न करें।'

'हिन्दी का उद्देश्य यही है, भारत एक रहे अविभाज्य
यों तो रूस और अमेरिका जितना है उसका जन राज्य
बिना राष्ट्रभाषा स्वराष्ट्र की गिरा आप गूँगी असमर्थ
एक भारती बिना हमारी भारतीयता का क्या अर्थ !'

मैथिलीशरण गुप्त

गणितांक

सुधा गोयल

शाम मंथर गति से अपने डैने फैलाए समस्त पृथ्वी को अपने में समेटने के लिए उतर रही है। पे ों के साये लम्बे हो रहे हैं। सूरज की प्रखरता घट रही है। वातावरण में थो ी उमस भी है। मैं बाहर की खि की खोल पर्दे हटा देती हूँ। हल्का नारंगी प्रकाश सारे दायरे में फैल जाता है। सामने नदी की लहरों में डोलता सूरज का लाल गोला जैसे जीवन धारण करने के लिए अंतिम साँस तक संघर्ष कर रहा है। पंक्तिबद्ध हो पंछी आकाश में उ ते अपने घरों को लौट रहे हैं। वे जानते हैं कि प्रकृति के इस संघर्ष में इस समय रजनी की ही जीत होगी।

मुझे आश्चर्य होता है कि इन जीवों को यह आभास कैसे हो जाता है? घरों का महत्व ये कैसे जानते हैं? तिनका-तिनका जो कर बनाया नी इतना आत्मीय क्यों हो जाता है। जबकि हवा के तेज झोकों से कभी भी टूट जाता है। घोंसले के साथ ही टूटकर स्वयं की आहुति देने वाले नन्हें पंछी से ही आदमी ने कुछ सीखा होता। मैं फिर जो -घटाव लगाने बैठ जाती हूँ।

सारा जीवन ही जो -घटाव करते निकल गया, लेकिन जीवन का एक भी सवाल कभी भी ठीक से हल नहीं कर पाई। अंकों को लिखती और मिटाती रही। यहाँ तक कि अपने दोनों हाथ किसी अना ी बच्चे की तरह स्याही में रंग लिए, जिसका नीलापन वक्त के साथ और भी बढ़ता गया। अपने आँसुओं के खारे पानी से बार-बार धोती रही, लिखती रही।

गणित का यह खेल अभी का नहीं, मेरे बचपन का है। समीकरण हल करती तो हमेशा पुत्र की उम्र पिता की उम्र से अधिक आती। अध्यापिका लाख समझातीं। कॉपी फा कर फेंक देतीं। कक्षा से बाहर निकाल देतीं। हथेलियों पर पैमाने ज तीं, डेस्क पर ख ा करतीं, मुर्गा बनातीं, लेकिन वे न मुझे समझा पातीं और न मैं उन्हें। पुत्र की उम्र पिता की उम्र से कम ही क्यों रहे? पिता अल्पायु तथा पुत्र दीर्घायु क्यों नहीं हो सकता? भला यह भी कोई गणित हुआ कि बस अध्यापिका का कहना मानो। मुझे ब ी झुँझलाहट होती।

अध्यापिका कहतीं - 'हिमानी के दिमाग में गोबर भरा है। अकल की बात घुस ही नहीं सकती।'

तब ब ी हँसी आती। मन कहता कि कहूँ - 'मैडम ! क्या अपना दिमाग भी देखा है? कहीं भूसे का ढेर तो नहीं।'

लेकिन नीची निगाह किए पैर के अँगूठे से ज़मीन कुदेरती ख ी रहती और अध्यापिका की सारी डाँट पत्थर पर चढ़ाए जल-सी बेकार हो जाती। अब उन्हें क्या मालूम था कि जिसके जीवन के अंक ही गलत हों, भला उसका गणित कैसे सही हो सकता है?

अध्यापिका शायद मेरे अंकों को व्यवस्थित करना चाहती थीं। लेकिन यह क्या इतना आसान था? हर विषय में विशेष योग्यता अर्जित करती, लेकिन गणित में लटकते-लटकते ही निकल पाती। शायद ल कियों के जीवन का गणितांक बचपन से ही ल ख ाता रहा है, जबकि ल के अक्सर विशेष योग्यता पाते हैं। इसलिए वह विषय ल कों के लिए सुरक्षित किया गया। जाने दिमाग में क्या फितूर उठा कि गणित ले लिया। गणित का ल की के जीवन से क्या संबंध? ल की के जीवन का गणित तो कभी ठीक हुआ ही नहीं। यह समझ उस समय कहाँ थी? वरना अध्यापिका से ही न पूछा होता कि 'मैडम ! आपके जीवन का गणितांक कैसा है?'

खैर, अध्यापिका मुझे दूसरी छात्रा की कॉपी से नकल करने के लिए उकसातीं, लेकिन मेरी नज़र किसी अन्य कॉपी के उत्तरांक पढ़ ही न पाती। ओढ़ा हुआ जीवन जैसे बोझ होता है वैसे ही चुराए गए अंक जीवन की तृप्ति तो नहीं। मेरा नन्हा दर्शन मेरी अध्यापिका नहीं समझ पाती थीं।

वे मुझे एक ज़हीन छात्रा समझती और मेरे जीवन की एक-दो ख़ामियों को दूर करने का प्रयास करतीं। जैसे अक्सर एक खेल हमारी पाठशाला (उस समय कावेंट नहीं खुला था) में होता था। उस समय इस खेल का महत्व मेरी समझ से परे था। हाँ, अब जीवन की पाठशाला में समझने लगी हूँ।

एक बहुत लम्बी-सी डोरी ली जाती। धागों की सहायता से अमरूद, सेव या संतरे की फाँकें समान दूरी पर, समान उँचाई से बाँध कर लटका दी जातीं। उसके दोनों सिरे दो छात्राएँ उँचाई से

पक कर ख ी हो जातीं। प्रतियोगी छात्राओं के हाथ पीछ दुपट्टे से बाँध दिए जाते। उन्हें एक पंक्ति में ख ा कर दिया जाता। यहाँ भी यह खेल गणित के अंकों से शुरू होता। तीन सुन कर छात्राओं को दौ ना होता और जो छात्रा सबसे पहले पहुँच कर मुँह से अपनी फाँक पक लेती, वही विजयी घोषित होती।

प्रतियोगी छात्राएँ एक-दूसरे को अ ंगी लगा आगे दौ जातीं। अध्यापिकाएँ मुझे भी प्रेरित करतीं, लेकिन एक अदद फाँक के लिए इस प्रकार दौ ते मुझे ब ी शर्म आती। विजयी छात्रा मुझे ब ी नदीदी लगती। इस प्रतियोगिता का मर्म अब समझ में आया भी है तो ब ी देर हो चुकी है। जीवन में कुछ पाना है तो दूसरों को अ गी लगा कर ही आगे निकला जा सकता है।

लेकिन अब न दौ ने की सामर्थ्य है और न किसी को अ ंगी देने की चाह। क्यों? मैं स्वयं अ ंगी खा-खाकर कितनी ही बार गिर चुकी हूँ और इसीलिए जीवन की दौ में अभी भी पाले के पास ही ख ी हूँ। साथ दौ ने वाले जाने कबके अपनी मंजिल पर पहुँच गए हैं।

तीन टाँग की दौ , एक टाँग की कूद - कहीं भी तो सफल नहीं हो पाई। ल कियाँ जब पुरस्कार में दो-दो रुपयों की चीज़ें पातीं और प्रसन्न होतीं तो मुझे उनकी बुद्धि पर तरस आता। चाँदी का कप, गोल्ड मेडल, गिलास, प्लेट, पुस्तकें, प्रामाण-पत्र अच्छा दूल्हा भले ही ढूँढ लें, लेकिन उनकी उपयोगिता गृहस्थ जीवन में तो कुछ भी नहीं !

माँ अक्सर कहतीं - 'हिमानी बस इतना पढ़ जाए कि अच्छा घर-वर मिल जाए।'

माँ की इस बात पर मैं पढ़ाई और दूल्हे का समीकरण हल करने लगती, लेकिन परिणाम वही जीरो निकलता। मैं अपना माथा ठोंक लेती - भला यह भी कोई पढ़ाई हुई कि जो भी सवाल हल करो उसी का उत्तर सही न निकले। ऐसी स्कूल की पढ़ाई से भी क्या फायदा जो जीवन में प्रश्न सुलझाने की जगह और भी उलझा दे। शायद इसीलिए इनाम लेना और देना मुझे ब ा हास्यास्पद लगता। अब पछताती हूँ कि फालतू के अहं में जक ी रही। यदि उनकी ही तरह मैंने भी कुछ सीखा होता तो कूद-फाँदकर, दौ -धूपकर, जीवन का पाला तो पार कर ही लेती। अब खाली प े-प े जो -घटाने लगाया करती हूँ।

एक बार शादी की पहली रात - महीम ने ब े ही सीधे सपाट शब्दों में जैसे आदेश दिया - 'हिमानी ! मुझे स्लीवलेस ब्लाउज़ पसन्द नहीं।'

पहली ही रात, पहली ही दृष्टि में महीम ने मेरी रुचि की परवाह किए वगैर अपना एकाधिकार स्पष्ट कर दिया और मैंने बिना किसी प्रतिरोध के हल्की-सी खरोंच प े मन के साथ तत्काल अपनी बाँहों को सा ी के पल्लू में समेटे-समेटे स्लीव वाली ब्लाउज़ पहन ली। परिणाम महीम की आँखों में देखना चाहा - सिफर ही रहा।

मन ही मन सोचा 'चलो, जाने भी दो।' और मैं दो और दो बराबर चार के अंक अपनी स्लेट पर लिखने लगी।

ब ी इच्छा थी कि महीम हनीमून के लिए कहीं बाहर चलें, जिससे खुलकर हँस-बोल सकें। एक-दूसरे को समझ सकें। महीम बहुत कम और नपे-तुले शब्दों में बोलते। मुस्कुराहट उनके चेहरे से दूर ही रहती। सोचा, परिवार में सबके सामने बोलने में संकोच करते हैं। लेकिन फिज़ूल-खर्ची और समय की बर्बादी की तीन पंक्तियों का ज़ुमला मेरी ओर उछाल कर शांत हो गए और मैं रूआँसी ज़मीन ताकती अपने बिखरे अंक देखती रही।

फिर एक दिन ससुराल के प्रथम परिचय के उपहार (रुपए) पर्स से निकाल कर ले गए। तीन शब्द मेरी ओर उछाले - 'ज़रा ज़रूरत है।'

ज़रूरत क्या है - यह जानने का मेरा अधिकार नहीं है। जब भी ज़रूरत होती - अपने पति-अधिकार का उपयोग करते हुए पर्स का मुँह खोल लेते लेकिन कभी पर्स का मुँह बंद नहीं करते। बहुत सारी बातें उनके एकाधिकार में आतीं, लेकिन वे कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं - यह जानना मेरा अधिकार न था।

मेरी ब ी इच्छा होती कि महीम टाई बाँधें। अपनी इच्छा का इज़हार कई बार दबी आवाज़ में किया था, लेकिन मेरे गणित को तो फेल होना ही था। टाई बाँधे, थ्री-पीस सूट पहने एक सुदर्शन रौबधारी व्यक्तित्व की कल्पना महज़ कल्पना ही बन कर रह गई।

महीम कभी भी कुर्ते-पायजामे से आगे नहीं बढ़ पाए। बाजार में शो-केस में टँगी शर्ट्स, पैंट, टाईपिन, टाईयाँ, कफ-लिंक्स मेरी बेबसी पर हँसते रहे और मैं नज़रें चुराती अपनी बाँहों को ढँकती रही। एक ढीला-ढाला, लुंज-पुंज-सा व्यक्तित्व मुझे मेरी हार पर चिढ़ाता रहा।

शादी से पहले भैया के साथ भाभी को प्रतिदिन सायं सज-सँवरकर घूमने जाते देखती। एक-दो बार जिज्ञासावश जानना भी चाहा तो माँ ने झि क दिया। मन ही मन शादी के बाद के अंक जमाने बैठ गई। मेरी स्लेट पर मेरे ही लिखे अंक रह गए। महीम ने प्लस कर दूसरी पंक्ति नहीं लिखी। अंकों को बिखरना था, बिखरते रहे।

वैशाली के जन्म पर फिर कुछ अंक समेट कर मुट्ठी में भर लिए। 'हैप्पी बर्थ डे टू वैशाली' की जगह मुट्ठी में सिमटी रेत की तरह एक-एक कर मन के सारे मनके फिसल गए।

अंकों का फिसलना जो शुरू हुआ तो फिर रुका ही नहीं। मैं अंकों को पक ने का प्रयास करती, लेकिन वे सब वक्त की आँधी में उ जाते और एक लिपी-पुती स्लेट मेरे हिस्से में आ जाती, जिसमें सब कुछ गड्डमगड्ड नज़र आता।

पुरुष-प्रधान समाज की पुरुषोचित गर्वोक्ति लिए महीम जीवन के हर पल को केवल अपने अहं से पोषित करना चाहते। उनके लिए हिमानी का व्यक्तित्व किसी वस्तु से अधिक नहीं। वे अक्सर कहते 'औरतों की बुद्धि उनकी गर्दन में होती है। इसी से वे पीछे मु -मु कर देखती हैं।'

मन होता कहूँ कि यह उक्ति अब मर्दों पर फबती है क्योंकि औरतें आगे बढ़ना सीख गई हैं और पुरुष अपने दम्भ के कारण वहीं ख ा है। वह औरत की अहमियत न तो स्वीकार कर सकता है और ना ही झुठला सकता है।

वैशाली और शैवाल भी मेरा गणित सही न कर सके क्योंकि महीम केवल एकाधिकार में विश्वास रखते हैं। वे दौ में अ ंगी देकर आगे निकलना जानते हैं। आगे निकलने के लिए किसी को भी अ ंगी दे सकते हैं। कौन कहाँ गिरा, कहाँ चोट लगी - उन्हें न सहलाने की फुरसत है, न देखने की।

दो और दो चार होते हैं - यही याद करते-करते पच्चीस साल निकल गए, लेकिन महीम के हिस्से का दो से मिल कर कभी चार नहीं हुआ। मैं अपने हिस्से का दो थामे एक पूर्णांक के इंतज़ार में घर की चौखट पर ख ी रही।

अ ंगी खा-खाकर गिरती रही, ज़ख्म खाती रही, सहलाती रही, फिर समानान्तर चलती रही। अपने हिस्से के दोनों अंक भी वैशाली और शैवाल को दे दिए। अब बचा केवल शून्य। लेकिन शून्य तो न गणितांक है, न जीवनांक, तो फिर?

इसी 'फिर' को बार-बार सोच रही हूँ। पीछे मु कर देखती हूँ। कहीं कुछ भी नज़र नहीं आता। सामने भी केवल डूबता सूरज, निपट एकाकी घनघोर अँधेरा। गणित में फेल होने का अर्थ यह तो नहीं कि अंक इतने स्याह हो जाएँ?

मैं अपने हाथों पर लगी स्याही को देखती हूँ। जितनी स्याही मेरे हाथों में लगी है, काश ! उनसे अपने लिए एक भी अंक रच पाती। अब तो बस इतना जानती हूँ कि समानान्तर चलने वाली रेखाओं की कोई मंज़िल नहीं होती। मंज़िल के लिए दोनों को सिमटना और एक बिन्दु पर मिलना होता है। मैं तो समानान्तर चलना छो भी दूँ लेकिन महीम?

मेरे सवाल के आगे लगा प्रश्नचिन्ह कभी नहीं हटता। मैं अंकों को तरह-तरह से रखने का प्रयास करती हूँ, लेकिन कोई भी अंक सही परिणाम नहीं देता।

अब तो वह अध्यापिका भी नहीं रही जो मेरे अंकों को व्यवस्थित कर दे। चलते-चलते हाथ दुःख गए हैं। स्याही चुकने लगी है। पृष्ठ घटते-घटते घट गए हैं। बस, मुझे इन्तज़ार है तो इतना ही कि महीम आकर एक बार अपने अंक ऊपर-नीचे कहीं भी रख दें। मैं जमा कर लूँगी।

इसी इन्तज़ार में रोज खि की खोल कर डूबते सूरज को देखती हूँ कि कहीं मेरे अंक न डूब जाएँ, रात की स्याही में स्याह न हो जाएँ। मुझे विशेष योग्यता न मिली, न सही, लेकिन उत्तीर्ण तो हो ही जाऊँ। ऐसे ही ख े-ख े रातें निकल जाती हैं, सूरज उग आता है और मैं एक नई उम्मीद में फिर जो लगाने बैठ जाती हूँ. . . .।

दीखते जैसे....

डा. रागिनी भूषण

दीखते जैसे, कभी वे दरअसल होते नहीं।
और हम जो हैं उन्हें वैसे कभी लगते नहीं।।

फूल की खुशबू समेटे
हम क्षितिज तक भी गये।
चाँदनी से बादलों के
घाव सहलाते रहे।

मौन हैं फिर भी अधर
शिकवा कभी करते नहीं।

पीर के आँसू पिये हैं
हमने मुस्काते हुये।
सह लिया हर पल खुशी का
अश्रु ढुलकाते हुये।

आँख के मोती हृदय की
हर व्यथा कहते नहीं।

ज़िन्दगी-पनघट पर राधा
बावरी के श्याम से।
जो बहुत अपने लगे वे
बन गये मेहमान से।

काश ! सपनों का सुनहरा
जाल हम बुनते नहीं।

जीवित रहूँगी सदैव...

ज्योति कालरा 'उम्मीद'

अक्षरों से बनी हैं साँसे
मात्रा है मर्यादा जीवन की
प्रश्नवाचक बने हैं कई समीकरण
विस्मय बोधक हुआ है मन
अर्द्धविराम बन जाते हैं हौंसले
'उम्मीद' है चन्द्रबिन्दु
पूर्णविराम बन जाएगी
ज़िन्दगी जिस दिन
पढ़ना मुझे उसके बाद भी
मैं जीवित रहूँगी
कविताओं में सदैव।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी की दशा एवं दिशा

महेन्द्र प्रताप सिंह

भारत एक विशाल देश है, जिसमें विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदाओं, संस्कृतियों, भाषाओं एवं बोलियों वाले लोग निवास करते हैं। हिन्दी के अतिरिक्त प्रांतों की अपनी-अपनी भाषाएँ हैं, जैसे तेलुगु, असमिया, कन्न , पंजाबी, कश्मीरी आदि। लेकिन हिन्दी भाषा देश की लोकप्रिय भाषा है। ऐसी भाषा जो देश के अधिकांश भागों में बोली व समझी जाती है। इसकी लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए संविधान सभा में १४सितम्बर, १९४९ को हिन्दी, राष्ट्रीय भाषा घोषित की गई और यह भी कहा गया कि १५वर्ष तक राजकाज की भाषा अँग्रेजी होगी और हिन्दी का भी प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन भाषा अधिनियम १९६३ के अनुसार कहा गया कि राजकाज की भाषा अँग्रेजी एवं हिन्दी दोनों होंगी। अँग्रेजी भाषा की समाप्ति के बारे में कुछ नहीं कहा गया। राज्यकीय (प्रांतों) कार्य अपने-अपने राज्य की भाषा में किये जा सकते हैं। सरकार की इस दोषपूर्ण नीति का हिन्दी के विकास एवं उन्नति पर अच्छा प्रभाव नहीं प ा। हालाँकि स्वतंत्रता के बाद हिन्दी भाषा का काफी विकास हुआ। कला विषयों के अतिरिक्त विज्ञान, वाणिज्य एवं अन्य टेक्नोलॉजी के विषयों की पुस्तकें उपलब्ध होने लगी हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान रामबक्ष सिंह ने कहा है कि देश की ८०प्रतिशत जनता हिन्दी में बोल, समझ एवं लिख भी सकती है। उसके विकास में मीडिया की भूमिका अहम् है। कम्प्यूटर ने भी इस कार्य को आगे बढ़ाया है। संविधान की भी भावना को पूर्ण करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने हिन्दी भाषा के विकास एवं उन्नति के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। जैसे अहिन्दी भाषी अधिकारियों, कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ाने के लिए देश के विभिन्न भागों में प्रशिक्षण केन्द्र खोले हैं। हिन्दी अधिकारी, हिन्दी टाइपिस्ट, प्रत्येक मंत्रालय के हर विभाग में भर्ती किये गये। हिन्दी के जानकार अहिन्दी भाषियों को उनकी पदोन्नति में वरीयता दी गई, प्रत्येक साक्षात्कार बोर्ड में एक सदस्य हिन्दी विशेषज्ञ रहता है। साक्षात्कार में उम्मीदवारों को हिन्दी-अँग्रेजी में बोलने की अनुमति है। सरकार के प्रयासों के अतिरिक्त अनेकों स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं के द्वारा क्षेत्रीय, प्रांतीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन होता है। फिर भी हिन्दी की उन्नति के संतोषजनक परिणाम नहीं रहे। इसके मूल कारण निम्नलिखित हैं -

१. सरकार की भाषा-नीति दोषपूर्ण : केन्द्रीय सरकार ने १९४९ को यह आश्वासन दिया था कि अँग्रेजी १५वर्षों के बाद समाप्त कर दी जाएगी। ऐसा नहीं हुआ। इससे दफ़्तरों में अँग्रेजी का वर्चस्व बना रहा और प्रायः देखा गया कि साक्षात्कार में अँग्रेजी भाषा में बोलने वाले उम्मीदवारों को वरीयता दी गयी।

२. हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में सरकार की दुलमुल नीति : इसका प्रभाव अभिभावकों की मानसिकता पर बहुत बुरा प ा। उनको सरकार पर संदेह होने लगा कि सरकार हिन्दी के प्रति न्यायोचित व्यवहार नहीं कर रही। इस नीति के कारण अभिभावकों को यह महसूस हुआ कि मेरे बच्चों का उज्ज्वल भविष्य हिन्दी में न होकर अँग्रजी भाषा में निहित है। अतः अभिभावक बाध्य होकर अपने बच्चों को पब्लिक स्कूल में भेजने लगे हैं। इस संबंध में अशोक कुमार ने कहा - जब तक संविधान में अँग्रेजी प्रतिष्ठित रहेगी तब तक हिन्दी और उसके साथ ही भारतीय भाषाओं को उचित स्थान नहीं मिल सकता।

३. रागात्मक चेतना का अभाव : डॉ. मार्कण्डेय सिंह ने कहा स्वतंत्रता के पूर्व भारत में अपनी भाषा हिन्दी के प्रति जो निष्ठा एवं रागात्मक चेतना थी स्वतंत्रता के बाद उसमें कमी आई। यह चिन्ता का विषय है।

४. कार्यालियों में हिन्दी में काम करने का वातावरण नहीं : प्रायः देखने में आया है कि अधिकांश दफ़्तरों में काम करने का ढंग पुराना ही है जो अँग्रेजी भाषा से प्रभावित है। ऊँचे पद पर कार्यरत पदाधिकारी हिन्दी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहन न देकर हिन्दी में काम करने वालों को हतोत्साहित करते हैं।

५. दफ़्तरों की हिन्दी कठिन होती है।

६. भूमण्डलीकरण एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आने के कारण भी हिन्दी भाषा के विकास में बाधा प ी है - व्यापारिक संबंधों और उनकी जानकारी लेने और देने में केवल अँग्रेजी का प्रयोग किया जाता

है और आधुनिक यंत्रों में अँग्रेजी मे ही काम होता है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्यापार का अधिकांश कार्य अँग्रेजी में ही किया जाता है।

७. विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित युवा पीढ़ी जाने-अनजाने हिन्दी की उपेक्षा करती है।

८. विदेशी भाषाओं के प्रति आसक्ति रखने वाले लोगों की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है - यह कहना असत्य न होगा देश की जनता के एक वर्ग ने अँग्रेजी को ही अपनाया और हिन्दी की उपेक्षा की। सार्वजनिक आयोजनों एवं शादियों, जन्मदिन आदि आयोजनों में भी कार्ड अँग्रेजी में ही होते हैं।

९. भारत में रहने वाला एक विशिष्ट वर्ग जो अँग्रेजी से अधिक प्रभावित है - उसकी मानसिकता है कि अँग्रेजी भाषा में बोलना-लिखना प्रतिष्ठा एवं ब प्पन की निशानी है।

इसी संदर्भ में हिन्दी के एक विद्वान अनिल चमडिया ने कहा - 'अँग्रेजों के जाने के बाद देश में ही एक अँग्रेजी भाषी वर्ग विकसित हुआ है इससे भी हिन्दी की प्रगति में बाधा प ी है।' डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल के शब्दों में, 'इस बाजार भाव ने हमारे जीवन की स्वाभाविकता को नष्ट कर दिया है। विज्ञापनों में हिन्दी वाक्य अँग्रेजी अक्षरों के द्वारा लिखे जाते हैं। साधारण जनता पर इसका बुरा प्रभाव प ा है। यह खेद की बात है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित दूरदर्शन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के ऐसे विज्ञापन लगातार प्रसारित किये जाते हैं।'

हिन्दी भाषा की प्रगति एवं सम्मान के लिए कुछ प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं :

१. सरकार की भाषा-नीति स्पष्ट होनी चाहिए। सरकार को हिन्दी भाषा के संबंध में स्पष्ट नीति घोषित करनी चाहिए।

२. स्नातक स्तर तक हिन्दी को अनिवार्य विषय घोषित करना चाहिए।

३. जो अधिकारी हिन्दी की प्रगति में एवं कार्य संचालन में बाधा पहुँचाते हैं उनके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही करनी चाहिए।

४. ऐसा देखा गया है कि सरकारी एवं अर्धसरकारी सेवाओं में अँग्रेजी में परीक्षा एवं साक्षात्कार देने वालों की नियुक्ति हिन्दी की अपेक्षा अधिक होती है। इस स्थिति की निष्ठा एवं शक्ति के साथ निष्पक्ष जाँच कराई जाए और दोषी पाये जाने वाले अधिकारियों के विरुद्ध सख़्त कदम उठाये जायें।

५. हिन्दी की प्रगति एवं प्रचार-प्रसार के लिए देश के कोने-कोने में स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाएँ संचालित हैं। लेकिन निष्ठा एवं आर्थिक अभाव के कारण वे अपने कर्तव्य का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं कर पा रही हैं। अतः सरकार को चाहिए कि इन संस्थाओं को पर्याप्य आर्थिक सहायता दे।

६. हिन्दी को व्यावसायिक शिक्षा से जो ने का प्रयास करें।

७. सभी सरकारी, अर्धसरकारी कार्यालयों, संस्थाओं एवं पदाधिकारियों के नाम देवनागरी में लिखे जाएँ।

८. यदि सरकार हिन्दी के प्रति निष्ठावान है तो उसे पब्लिक स्कूलों पर नियंत्रण रखना चाहिए और यह देखना चाहिये कि ये स्कूल हिन्दी की उपेक्षा तो नहीं कर रहे। यदि ऐसा हो तो सरकार को उनकी मान्यता समाप्त कर देनी चाहिए।

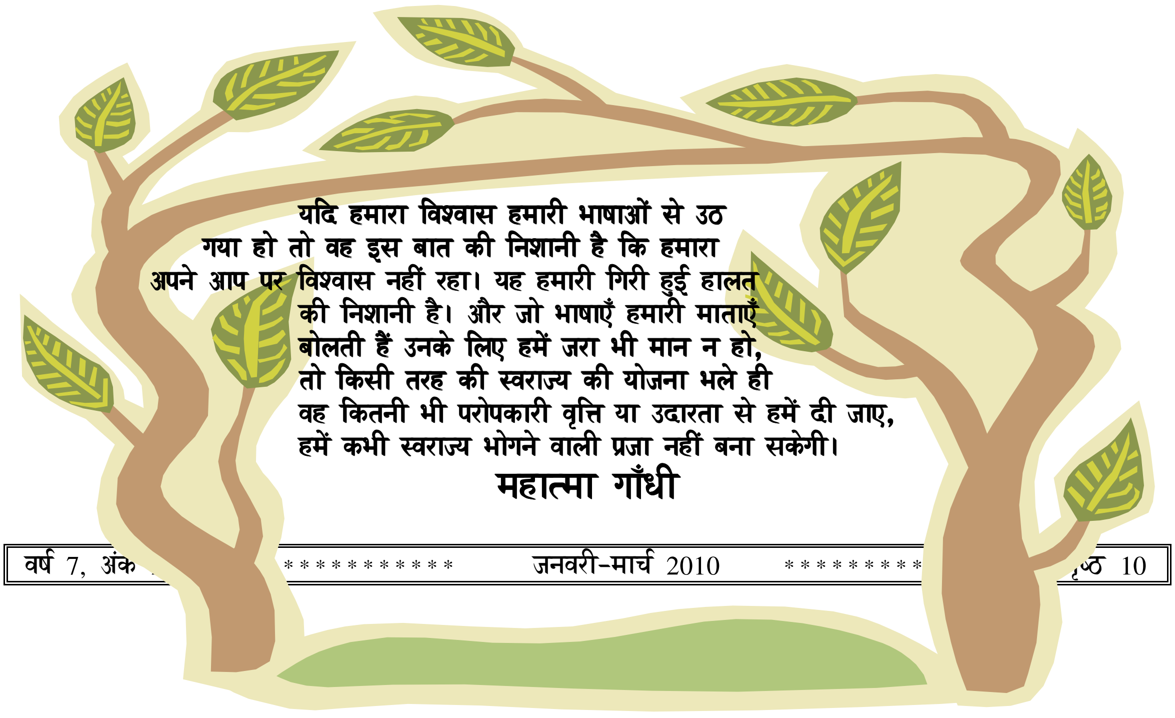

जीवटता

अक्षय गोजा

समस्याओं के बोझ तले
पिचका हुआ
करता रहता था चिन्ता
कि कब हल हों ये
तो जीवन पाऊँ।
निराश था
कि ये नहीं होंगी हल कभी भी
जीवन ही नहीं मिल पायेगा मुझे।

परन्तु जब हल हो चुकीं कई
समाधान मिलने लगे अन्य के भी,
तो दौर चल प ा
नये-नये विचारों का।

अहसास उभरा
कि आती रहेंगी समस्याएँ
हल होती रहेंगी
इसी का नाम जीवन है।

तो लगा
किसका इंतज़ार है मुझे?
जी तो रहा हूँ,
तब क्यों नहीं जीता मैं
जीवटता के साथ?

कब तक !

शैल अग्रवाल

कब तक हँसोगे
यूँ बंद आँखों से
पहचानो,
काली शारदा
दुर्गा, पार्वती, सीता, सावित्री
और मोहिनी, रम्भा
सौ रूप लिए मैंने
खुद जन्मी
अपने ही शव की कोख से
कोमल ज़रूर
पर कमज़ोर नहीं
संगिनी सहचरी
भाग्य-विधाता
जननी हूँ
तुम्हारे सौभाग्य
और एक-एक
दुर्भाग्य की. . . .

पिछले दिनों एक ख़बर पर आँखें प ीं तो जमी ही रह गईं। अख़बार पर छपे शब्द आग की लपट से झुलसा रहे थे। बचने के प्रयास में और भी जलती ही चली गई। किसी भी प्रतिक्रिया का कारण होता है और फिर कोई भी प्रतिक्रिया समान और प्रतिलोम दोनों ही तरह से तो हो सकती है। महर्षि दयानंद सरस्वती ने कहीं लिखा था - हर मानव को कुछ करने से पहले सोचना चाहिए कि उसके इस कर्म का उसके आस-पास और समाज पर क्या असर होगा। यदि कर्म का सिर्फ़ उससे संबंध है तो उसे निर्णय की पूर्ण स्वतंत्रता है, वरना नहीं - पर क्या वास्तव में ऐसा हो पाता है - रहती है क्या मानव के पास जरा भी स्वतंत्रता? मन अगर एक यंत्र है तो हमारे लिए यह जानना संभव ही नहीं, ज़रूरी भी है कि आख़िर यह यंत्र चलता कैसे है और क्या-क्या कर सकता है - आसान शब्दों में इससे क्या-क्या काम लिया जा सकता है, अच्छे से अच्छा, भरपूर सामर्थ्य और उपयोगिता के अनुरूप? परन्तु समस्या तब आती है कब आज के इस यंत्रीकरण के युग में भी मन यंत्र बनने से इंकार कर देता है और सारे उर्जे-पुर्जे खोलने के बाद भी बस एक आंतरिक बेचैनी और तनाव ही हाथ लग पाता है।

आप सोच रहे होंगे कि क्या थी वह ख़बर जिसने इतनी उथल-पुथल मचाई - एक गंभीर चिंतन की काल-कोठरी में ला ख ा किया मुझे। एशियन मूल की एक माँ ने अपनी वयस्क बेटी को सुयोग्य परन्तु द्विजातीय प्रेमी से शादी करने के लिए न सिर्फ़ प्रोत्साहित किया वरन् मदद भी की और परिवार की नज़र में किए गए इस अपराध के लिए शादी के तुरंत बाद ही उसे जला कर मार दिया गया - सोते हुए बेटी और उसके समस्त परिवार के साथ। इन निर्मम हत्याओं के लिए अब खुद उसके अपने पति और बेटे को स्थानीय पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। यहाँ ध्यान रखना होगा कि वह औरत तलाकशुदा थी और इस घटना के पहले उसके पति और बेटे ने कभी यह जानने की भी कोशिश नहीं की थी कि वे माँ बेटी जिन्दा भी हैं कि मर गईं। फिर अचानक जिम्मेदारी और अपनापन का इतना जघन्य और तीव्र अहसास क्यों ! घटना भारत की नहीं इँग्लैंड की है और अट्ठारहवीं सदी की भी नहीं, आज की इसी इक्कीसवीं सदी की ही है। मौत को प्रेयसी या सम्मान की तरह गले लगा लेना आज भी इस निराशावादी समाज का (विशेषतः भारतीय नारी के संदर्भ में) एक विलक्षण गुण है। परंतु जब भी समाज या इसके ठेकेदारों ने अपनी सफेद चादर में लपेटकर एक स्पंदित हृदय जलाया है या

फिर एक ज्वलंत चेतना को विस्मृति की धार में अस्तित्वहीन करके बहाया है तब तब हज़ारों प्रश्नों के प्रेतों ने समाज को जक ा है - मूल्यों और विचारों के चेहरों पर कई असह्य और भद्दे प्रश्न-चिह्न खरोंचते हुए। कहाँ ख़त्म होती है यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कहाँ शुरू होनी चाहिए समाज की ज़िम्मेदारी? औरतों के संदर्भ में तो सवाल और भी मुखरित हो उठता है क्योंकि आज भी सारी लगाम पुरुषों के हाथ में ही है और सब जानते समझते हुए भी कोई इन सवालों के जवाब जानना ही नहीं चाहता, खुद औरतें भी नहीं।

फूल-सी कोमल बेटियों, बहनों, प्रेयसियों और पत्नियों को आज भी लोग यशोधरा की तरह त्याग देते हैं, अनुसूया की तरह छलते हैं और द्रौपदी की तरह दाँव पर लगा कर हार जाते हैं। क्योंकि आज भी (समस्त सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के बाद भी) वह उनकी संपत्ति ही हैं। और आज भी उनमें इतनी बुद्धि नहीं है या चरित्र में दृढ़ता नहीं है, इसलिए सीता की तरह अग्नि-परीक्षा लेते हैं और मीरा की तरह विष-पान कराते हैं। कितनी भी समर्थ और विलक्षण हो आज की नारी परंतु पुरुष-प्रधान इस समाज में तो उसे संपत्ति की तरह आरक्षण और सुरक्षा में ही रहना चाहिए - सौ-सौ तालों के पीछे।

क्यों होता आया है ऐसा - क्यों इतनी अबला है आज भी आज की यह सबला नारी - क्या हमेशा से नारी के बारे में समाज और पुरुषों की सोच ऐसी ही रहेगी - शक और अविश्वास से ओत-प्रोत, प्रश्न पर प्रश्न उठाती? हम सभी जानते हैं कि जीवन के अहं मूल्यों का जन्म जीवन के सुख-दुःख, संयोग-वियोग, सफलता-असफलता जैसे विरोधी तत्वों के टकराव से ही होता है परंतु जीवन में तो सम की अपेक्षा ही की जाती है और इसके लिए आवश्यक है कि ज़रूरतों और समाधानों को समझा जाए। क्या हमारे ऋषि मुनि हज़ारों साल पहले ही इसे समझ और जान चुके थे? आइए देखें क्या कहते हैं हमारे भारतीय ग्रंथ और विद्वान इस विषय पर।

उनकी नज़र में स्त्रियाँ दासी या तुच्छ नहीं पुरुषों की पूरक और पूज्य थीं और एक निश्चित कर्तव्य के लिए ही वह इस धरती पर आई थीं जैसे कि पुरुषों का भी एक निश्चित उत्तरदायित्व था। 'प्रजनार्थ स्त्रैयः सृष्टाः सन्तान कार्यः मानवत्।' स्त्रियों की रचना गर्भाधान के लिए और पुरुषों की गर्भाधान कराने के लिए की गई है। ज़रूरतें साधारण थीं तो समाज के नियम भी साधारण ही थे उस वक्त। परंतु प्रत्येक कार्य में पति पत्नी साथ थे। वेदों में साधारण धर्म कार्य का अनुष्ठान भी पत्नी के साथ ही करने का विधान है। आगे चल कर वेद यह भी कहते हैं जहाँ भार्या से भर्ता और पत्नी से पति एक-दूसरे से बहु-भाँति खुश रहते हैं उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं।

अब इस समस्त कलाओं से युक्त कामिनी को वश में रखने का ऋग्वेद में बस एक ही उपाय बताया गया है 'हृदय की शुद्धि'। जो मन में हो वही व्यवहार में हो और जो व्यवहार हो वह मन से हो। अन्यथा स्त्रियों का मन नाना रूप वाला है और विविध बातों को सोचने के लिए विवश हो जाता है। छत्तीसवें श्लोक में कहा गया है कि नारी के हित के लिए आवश्यक है कि वह ओजस्विनी हो और उसमें अपने चरित्र की रक्षा करने की सामर्थ्य हो। वह समाज में अपने अधिकार स्थापित कर सके। ५१ - नारी को अजेय और शत्रु विजयिनी बताया गया है। उसके लिए सहस्त्र वीर्या शब्द का प्रयोग हुआ है अर्थात् वह एक नहीं सहस्त्र सामर्थ्य वाली है। ४१ - ऐसी नारी संकोच छो कर आगे बढ़ती है और अज्ञान रूपी अंधकार दूर करती है। ५० - नारी के शील की रक्षा को राष्ट्र का उत्तरदायित्व बताया गया है। जहाँ नारी के चरित्र की पूर्ण रक्षा होती है वही राष्ट्र सुरक्षित कहा जाता है। यानी कि चरित्र के परिष्करण और दृढ़ता से ही सुरक्षित समाज की रचना हो सकती है। यह नियम तब भी लागू था और आज भी।

एक मंत्र में कलाओं की शिक्षा का भी संकेत है। वह नृत्यकला आदि सीखती है। उषा देवी को एक कुशल नर्तकी की तरह नृत्य करते प्रस्तुत किया गया है। २२ - नारी के श्रृंगार का भी जिक्र है। वह सुंदर वस्त्र और स्वर्णाभूषण धारण करती है। ३१ - पलंग पर सोती है और इत्र आदि सुगंध लगाती है। अर्थात् वैदिक नारी तिरस्कृत और उपेक्षित कदापि नहीं थी। ऋग्वेद में गृहलक्ष्मी के रूप में चित्रित करते हुए नारी को 'कल्याणी जया' अर्थात् मंगलकारिणी और 'कुलपा' कहा गया है यानी कि कुल का पालन-पोषण करने वाली। अन्यत्र गृहणी ही गृह है ऐसा भी कहा गया है। उसके गुणों में लज्जाशील, मधुर-भाषिणी और प्रसन्न-चित्ता होने को प्रमुखता दी गई है। उसे प्रेम या स्वयंवर विवाह का अधिकार है। विवाह प्रेम या योग्यता के आधार पर होना चाहिए और यही विवाह उचित व श्रेष्ठ

है। बाल विवाह का विरोध है। मनु स्मृति में कन्या के रजस्वला होने के तीन शरद बाद ही विवाह का विधान है, इस तरह से बाल-विवाह वर्जित हुआ। आत्म रूपी पुत्र पुत्री समान हैं। 'यथैव आत्मा तथा पुत्रः, पुत्रेण दुहिता समः'। पुत्र न होने पर पुत्री समस्त संपत्ति की अधिकारी है और अविवाहिता कन्या पुत्र के समान ही दया की भागी है। ८३ - स्त्री अपहरण राष्ट्र कलंक है। स्त्री हरण इतना ब ा महापाप है कि पापी को इस लोक में क्या परलोक में भी कष्ट सहना प ता है। लगता है स्त्रियों के हितों के प्रति हमारे ऋषि मुनि आज के समाज से ज़्यादा सजग और सचेत थे। आज का समाज कहने को तो बराबर का दर्जा देता है परंतु सब कुछ नियंत्रण में रख कर, अपने पूर्ण हस्तक्षेप के बाद और उनकी हर कोमल भावनाओं की पूर्ण अवहेलना कर के।

८७ - स्त्रियों की कमियों की तरफ भी उल्लेख किया गया है। ३६० - 'न समाधि स्त्रीषु लोकाज्ञता चा'। अर्थात् औरतों में समझदारी और सांसारिक अनुभव नहीं होता। ३५७ - 'दुष्कलत्रं मनस्विनां शरीरकर्शनम्' - दुष्ट स्त्री मनस्वी पुरुष को कृष बना डालती है। ३५१ - 'स्त्रीषु किंचिदपि न विश्वसेत्' - औरतों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ३४८ - 'स्त्रीणां अतिसंगां दोषामुत्पादयति' - स्त्रियों का अति सहवास दोष उत्पन्न करता है। दुराचारी स्त्री को स्वान की भी उपाधि दी गई और व्यभिचारी पुरुष को सियार और भे िया। पुरुषों की आचारसंहिता पर विचार करते हुए यह भी लिखा गया है कि 'स्वदासी परिग्रहो हि स्वदास भाव', अपनी दासी के साथ संभोग करना अपने को दास बनाना है। 'परदारान् न गच्छते' - परायी स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए। और 'स्त्रीणां न भर्तुःपर दैवतम् - पति से ब ा कोई देवता स्त्रियों के लिए नहीं है। बाल्मीकि की रामायण में आदर्श पत्नी सीता वैसा ही करेगी जैसा कि राम चाहेंगे। और एक पूर्ण नारी के रूप में कौशल्या के लिए विलाप करते हुए दशरथ ने कैकेयी से कहा था कि कौशल्या जो सेवा करने में दासी के समान, रहस्य में सखी के समान, धर्म कृत्यों में स्त्री के समान, हितैषियों में बहन के समान, आग्रहपूर्वक भोजन कराने में माँ के समान, सदा कामना करने वाली (भला चाहने वाली) और सभी पुत्रों से स्नेह करने वाली - समय-समय पर जो उपस्थित होती रही, पर सत्कार के योग्य होते हुए भी मैंने तेरे कारण उसका समुचित सत्कार नहीं किया - यह सोच कर कि कहीं तू यह न समझ बैठे कि मैं तुझे प्यार नहीं करता या तुझसे कौशल्या की अपेक्षा कम करता हूँ। इस वार्तालाप से हम जान सकते हैं कि स्त्रियोचित कोमल गुण तब भी वैसे ही लागू थे जैसे कि आज होते हैं। संरक्षण और शौर्य यदि पुरुषोचित गुण हैं तो सृजन और भरण-पोषण स्त्रियोचित। और जीवन में दोनों का ही महत्व बराबर का है। तुलसीदास रामायण में कहते हैं -

१. जिय बिनु देह नदी बिनु बारी,
तैसि अनाथ पुरुष बिन नारी।
२. धीरज धर्म मित्र अरू नारी,
आपद काल परिखिअहीं चारी।
३. एकई धर्म एक व्रत नेमा,
कायं बचन मन पतिपद प्रेमा।

अंत में - 'मातृ पित्राचार्यतिथियः भार्ययाः भर्ता मनुश्च भार्येति मूर्तिमन्तो देवाः' अर्थात् माता-पिता, आचार्य, अतिथि स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए पत्नी और नारी ये पाँच मूर्तिमान देव हैं। इनकी पूजा ही सच्ची पंचायतन और वेदानुकूल देव पूजा और मूर्ति पूजा है। नारी पुरुषों के पारस्परिक संबंध, आचार संहिता आदि का जितना व्यावहारिक और सैद्धान्तिक वर्णन हमारे वेदों और ग्रंथों में है शायद आज भी कहीं और नहीं। आज समाज बदल चुका है। आज की ज़रूरतों के मुताबिक सुधार करके आज भी इन मूल्यों पर चला जा सकता है। अपनी कुंठाओं और व्यसनों से ग्रसित मानव को अपने मुखौटे उतारने ही होंगे। नारी की ज़रूरत और उपादेयता दोनों को भी समझना होगा। आज जब सिद्धांत कप ों की तरह बदले जाते हैं और स्वार्थ का इत्र सर्वव्यापी है, शायद यह सब इतना आसान न भी हो। समाज से क्या, परिवार से भी जु पाना आज एक कठिन काम है। परंतु परिवार ही तो वह मुख्य इकाई है जिसकी आचार संहिता समाज और बाद में पूरा देश व्यवस्थित रखती है। सभ्यता का प्रतीक बन कर उबरती है। जब तक परिवार का हर सदस्य जीवन के तृण मूलों को और पारस्परिक ज़रूरतों को नहीं समझेगा - असुरक्षित महसूस करेगा, और ऐसी अवस्था में व्यक्ति और समाज, दोनों

ही के हित में गलत और असभ्य निर्णय होते ही रहेंगे. . . .इनमें से कुछ को तो हम-आप और हमारा समाज अपराध भी कहेगा। . . .

कामायनी से. . . .

जयशंकर प्रसाद

मैं देव-सृष्टि की रति-रानी निज पंचबाण से वंचित हो,
बन आवर्जना-मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति-सी संचित हो,
अवशिष्ट रह गई अनुभव में अपनी अतीत असफलता-सी,
लीला विलास की खेद-भरी अवसादमयी श्रम-दलिता-सी,
मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ
लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन-सी लगती,
कुंचित अलकों-सी घुँघराली मन की मरोर बन कर जगती,
चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली।
हाँ, ठीक, बताओगी मेरे जीवन का पथ क्या है?
इस निवि निशा में संसृति की आलोकमयी रेखा क्या है?
यह आज समझ तो पाई हूँ मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सुन्दर कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ।
पर मन भी क्यों इतना ढीला अपने ही होता जाता है,
घनश्याम-खंड-सी आँखों में क्यों सहसा जल भर आता है?
सर्वस्व-समर्पण करने की विश्वास-महा-तरु छाया में,
चुपचाप प ी रहने की क्यों ममता जगती हैं माया में?
छायापथ में तारक-द्युति-सी झिलमिल करने की मधु-लीला,
अभिनय करती क्यों इस मन में कोमल निरीहता श्रम-लीला?
निस्संबल होकर तिरती हूँ इस मानस की गहराई में,
चाहती नहीं जागरण कभी सपने की इस सुघराई में।
नारी जीवन का चित्र यही क्या? विकल रंग भर देती हो,
अस्फुट रेखा की सीमा में आकार कला को देती हो।
रुकती हूँ और ठहरती हूँ पर सोच-विचार न कर सकती,
पगली-सी कोई अंतर में बैठी जैसे अनुदित बकती।
मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ,
भुजलता फँसा कर नर-तरु से झूले-सी झोंके खाती हूँ।
इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है,
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ, इतना ही सरल झलकता है।
क्या कहती हो ठहरो नारी ! संकल्प-अश्रु जल से अपने -
तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने-से सपने।
नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग पगतल में,
पीयूष-स्त्रोत-सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।
देवों की विजय, दानवों की हारों का होता युद्ध रहा,
संघर्ष सदा उर-अंतर में जीवित रह नित्य-विरुद्ध रहा।
आँसू से भींगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा -
तुमको अपनी स्मित रेखा से यह संधिपत्र लिखना होगा।

नारी

स्नेह ठाकुर

अश्क़ हूँ
वक्त की पलकों पे टिकी हूँ
लहर हूँ
सागर की बाहों में थमी हूँ
शबनम हूँ
ज़मी के आगोश में बसी हूँ
चिन्गारी हूँ
शोला बन के भ की हूँ।

किरण हूँ
सूरज में समाई हूँ
लता हूँ
तने के सहारे बढ़ी हूँ
नदी हूँ
कगार के बन्धन में बँधी हूँ
फूल हूँ
काँटों से उलझती हूँ।

कोमल हूँ
रुई के फाहों में सहेजी जाती हूँ
धरती हूँ
अम्बर के चँदोवे तले फली-फूली हूँ
अबला हूँ
पुरुष की संरक्षता में रहती हूँ
नारी हूँ
पुरुष व पुरुषार्थ की जन्मदात्री हूँ;
नारी हूँ
पुरुष व पुरुषार्थ की जन्मदात्री हूँ।

हिन्दी की वैश्विक क्षमता

डा. मेहता नगेन्द्र सिंह

विश्व-मंच पर हिन्दी अपनी इन्द्रधनुषी ध्वजा शान से फहरानेवाली है। हिन्दी की सरलता, सुगमता, सरसता, मनोज्ञता और जनसम्प्रेषणीयता में यथातथ्य एकरूपता, स्वरादि का भाषा वैज्ञानिक पक्ष सर्वथा प्रशंसनीय और अनुपमेय है। आगे भी यथास्थिति बनाये रखने में हिन्दी समर्थ है।

भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के परिप्रेक्ष्य में भी हिन्दी की वैश्विक क्षमता है। इस बात को भारत के लोग ही नहीं, बल्कि विदेशों में बसे भारतवंशी और विदेशी भाषा-भाषी जनसमुदाय, ख़ासकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के संचालक-समुदाय भी हिन्दी का महत्व समझ गए हैं और मुक्त कंठ से हिन्दी का गुणगान करने लगे हैं।

माना कि हिन्दी भारत की बहुत प्राचीन भाषा है और इसका सर्वदा विश्व-व्यापी प्रभाव रहा है। इसी भाषा के सुकंठ से 'वसुधैव कुटुम्कम्', 'अहिंसा परमोधर्मः', 'सत्यमेव जयते', 'सबै भूमि गोपाल की', 'जियो ओर जीनो दो' और 'सर्वोदय' इत्यादि दार्शनिक सूक्तियों का प्रस्फुटन हुआ है। यही कारण है कि हिन्दी अहिंसावादी और समन्वयवादी चिन्तनधारा की संवाहिका है। समस्त मानव-संस्कृति का मूलाधार है।

हिन्दी-भाषा की संरचना विश्व की सभी भाषाओं की संरचना की अपेक्षा अधिक उदार और लचीली है। गद्य-पद्य के सभी विषय हिन्दी में सुगमता से कहे जा सकते हैं। सभी रसों का प्रत्यक्ष चित्र खींचने के लिए हिन्दी के पास विपुल शब्द-भंडार विद्यमान है। इतर हिन्दी से अन्य सभी भाषाओं की बातें इसमें सरलतापूर्वक अनुवादित हो सकती हैं।

भारत की परम्परागत भाषाओं, क्षेत्रीय बोलियों, प्रादेशिक भााषओं और विश्व-भाषाओं से आगत शब्दों और रूपों ने हिन्दी की संरचना को ही वैज्ञानिक और व्यापक नहीं बनाया है, बल्कि इसकी प्रयोग-क्षमता को भी बढ़ाया है। क्योंकि इन दिनों हिन्दी केन्द्राभिसारी प्रवृत्ति से मुक्त होकर केन्द्र पारगामिनी प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हुई है।

हिन्दी का लोकायतन विशाल है। हिन्दी अपनी अनेक सरल और मोहक शैलियों के कारण आज भारत की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रम करके विश्व-सीमाओं का संस्पर्श करती जा रही है। इसका साक्ष्य है, विश्व-स्तर पर करो ों ज़ुबानों पर हिन्दी का सहजता से थिरकना।

हिन्दी अब परम्परा की भाषा नहीं रही, प्रगति की भाषा बन गई है। प्रौद्योगिकीकरण ने हिन्दी को आधुनिक प्रौद्योगिकी से भी जो दिया है। कम्प्यूटर की मुख्य भाषा बनने में हिन्दी के सामने कोई अ चन नहीं दिखती। इस तरह तकनीकी अभिव्यक्ति में भी हिन्दी कमज़ोर नहीं साबित हो सकती।

इस तरह वैश्विक क्षमता की कसौटी पर हिन्दी विशिष्ट रूप से खरी उतरने की सामर्थ्य रखती है; क्योंकि हिन्दी को ही बहुशैलीमूलक, बहुप्रयोजनमूलक, बहुसंदर्भी, बहुआयामी, बहुप्रभावी, और बहुस्तरीय स्वरूप का स्थापत्य प्राप्त है। इसकी चिरस्थायी स्थापना के प्रयास किए जा रहे हैं, इस बाबत एक बिन्दु पर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है कि जहाँ-जहाँ हिन्दी की स्वीकृति नहीं बन पाई है, वहाँ स्वल्प श्रम और कम ख़र्च पर स्वीकृति स्थापित कराई जा सकती है।

जय हिन्दी : जय जगत ।

'हिन्दी उन सभी गुणों से
अलंकृत है जिनके बल पर वह
विश्व की साहित्यिक भाषाओं की
अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।'

मैथिलीशरण गुप्त

हिन्दी जन-जन की भाषा है

स्नेह लता

संस्कृत पुनीत इसकी माता।
इसका स्वरूप सबको भाता।।
लिपि देवनागरी वैज्ञानिक,
इसकी प्रेरक परिभाषा है।
हिन्दी जन-जन की भाषा है।।
वर्णों की छवि लगती अनुपम।
शब्दों का कोश विशाल परम।।
व्याकरण विशेष शास्त्र-सम्मत,
इसमें सन्निहित शुभाशा है।
हिन्दी जन-जन की भाषा है।।
यह श्री-सम्पन्न विचारों से।
यह अति समृद्ध उद्गारों से।।
यह अपने सभी पाठकों की,
करती सुशान्त जिज्ञासा है।
हिन्दी जन-जन की भाषा है।।
इसका साहित्य समुन्नत है।
विद्वानों का यह ही मत है।।
यह पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करे,
सबकी हार्दिक अभिलाषा है।
हिन्दी जन-जन की भाषा है।।
इसका सब ओर प्रचार बढ़े।
इसका सब ओर प्रसार बढ़े।।
बन जाए विश्व की भाषा यह,
ऐसी ही मंगल आशा है।
हिन्दी
जन-जन की
भाषा है।।

अपराजिता

कमल कपूर

यादों के झरोखे से झाँक-झाँककर आज फिर एक बार मैं देख रही थी. . . .जी रही थी, 'उन' पलों को, 'उन' दिनों को, और देखते-देखते जा पहुँची 'उस' दिन तक जब स्कूल से निकल कर मैंने 'कॉयनेटिक' घर की ओर नहीं, बाज़ार की ओर मो दिया था, सोच कर कि गृहस्थी की कुछ छुट-पुट चीज़ें और सब्जी-फल लेती चलूँ।

आम, खरबूज़े खरीद कर उनका मोल चुका रही थी कि तभी एक महीन मगर तीखी-रूखी स्वर-लहरी मेरे कानों से टकराई, 'इतने स े-से टमाटर और बीस रुपए किलो? पंद्रह रुपए किलो देने हैं तो बात करो, भैया !' ब ा जाना-पहचाना-सा स्वर था यह. . . .तो किसी का ! और एक नाम मेरे दिमाग में बिजली की तरह कौंध गया। फिर मैंने बिना सोचे-समझे, पूरे यकीन के साथ जाकर उसके कंधे पर हाथ धर दिया। 'बदतमीज़' कह कर वह पलटी तो यह देख कर मैं खिल उठी कि मेरा यकीन झूठा नहीं निकला, 'अपराजिता तू? तू यहाँ कैसे?' मैंने हुलसकर पूछा।

'और तू यहाँ कैसे?' पूरी गर्मजोशी से मुझसे लिपटते हुए पूछा उसने।

'मैं तो कई सालों से इसी शहर में रह रही हूँ। जय की नौकरी भी यहीं है और मैं भी यहीं सेंट पीटर स्कूल में पढ़ाती हूँ. . . .तू सुना।'

'अभी सवा साल पहले ही आई हूँ मैं तो यहाँ। सुशांत, मेरे पति ने कोई नई कंपनी ज्वाइन की है।'

'कितनी अजीब बात है न कि इतने अर्से से एक ही शहर में रहते हुए भी हम टकराए तो इस सब्जी-मंडी में, जहाँ तू इन स े टमाटरों का मोल-भाव कर रही थी', मैंने कहा तो वह खुल कर हँस प ी। कितनी प्यारी लग रही थी वह हँसते हुए, पहले की तरह, लेकिन इसने अपना यह हाल क्या बना रखा है? मुरझाई-मैली, सस्ती-सी सूती सा ी और झगला-सा ब्लाउज, बेनूर चेहरा, बुझी-बुझी आँखें और माँग में भरा चटक सिन्दूर पसीने के साथ घुल कर माथे तक बह आया था। विश्वास नहीं हुआ कि यह वही ल की है, जिसके सजने-सँवरने के ढंग से सारा कॉलेज चमत्कृत रहता था। दिन-भर कॉटन सा ी पहने रहती थी, पर मज़ाल है जो एक भाँज भी बिग े। उसके साँवले-सलोने रूप-लावण्य, इकहरी देहयष्टि, स्याह बालों वाली लम्बी मोटी चोटी और प्रखर बुद्धि को देख कर हमें शिवानी की 'कृष्णवेणी' की याद आती थी। ल कियाँ कहती थीं कि यदि कृष्णवेणी शिवानी के उपन्यास के पन्नों से निकल कर बाहर आती तो बिल्कुल ऐसी ही होती।

'क्या सोचने लगी रे तू?' मेरी आँखों के सामने हाथ लहराते हुए उसने कहा।

'कितनी कमज़ोर हो गई है तू ! और तूने ये क्या हाल बना लिया है अपना? ऐसी तो तू कभी नहीं थी।'

'अब क्या बताऊँ तुझे, दिव्या ! इतने सालों के बाद तो मिले हैं हम और मैं अपना रोना ले कर बैठ जाऊँ' एक ठंडी साँस लेकर कहा उसने।

'आ न, कहीं बैठ कर ठंडा पीते हैं और दुःख-सुख बाँटते हैं।'

'नहीं रे, मेरी हालत भी है किसी ढंग की जगह पर बैठने की?'

'तो चल, तेरे घर चलते हैं।'

'नहीं रे बाबा, मेरी सास है न घर में - माँ चंडी का दूसरा रूप ! न जाने तेरे साथ कैसा बर्ताव करे।'

इतने वर्षों बाद मेरी वह सखी मिली थी। इसके साथ बचपन, कैशौर्य और युवावस्था के अनगिन दिन बिताए थे मैंने। जिसे मैं अपनी 'प्राण-वायु' कहा करती थी, कैसे फिर अलग हो जाती उससे मिलने के फौरन बाद? इसलिए मैंने आख़िरी प्रस्ताव रखा, 'मेरे घर चलेगी?'

'हाँ, हाँ' आशा के विपरीत वह फौरन तैयार हो गई।

'कॉयनेटिक पर बैठ जाएगी न?'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं।'

घर के भीतर कदम रखते ही वह बच्चों की तरह पुलक उठी, 'वाओ ! कितना सुंदर है घर तेरा, एकदम स्वर्ग का टुक ा। बच्चे कहाँ हैं तेरे? कितने हैं? क्या नाम हैं? कौन-सी क्लास में पढ़ते हैं?'

उसके सारे सवालों के जवाब एक साथ दे दिए मैंने, 'एक बेटा है शुभम्, जो टेंथ में है। एक बेटी है शिवांगी, जो एम.बी.बी.एस. के फर्स्ट इयर में है। शिमला मेडीकल कॉलेज में हॉस्टल में रहती है। और तेरे बाल-गोपाल?'

'मेरा तो एक ही है सुदीप....महा शैतान ! जब सवा लाख शैतान मरे होंगे, तब मेरा इकलौता बेटा पैदा हुआ होगा।' उसकी परिहास-प्रियता अब भी कायम थी, सोच कर तसल्ली हुई मुझे।

'मैंने तो सुना था तेरी 'लव मैरिज' हुई है। कैसे और कब हुआ सब?' फ्रिज से पानी की बोतल निकालते हुए मैंने पूछा तो वह बुझ-सी गई।

'उसी 'लव मैरिज' की सजा तो भुगत रही हूँ आज तक। सब तकदीर के खेल हैं दिव्या ! दुर्गा पूजा उत्सव में अपने एक बंगाली बांधव के साथ आया था ये सुशांत। मेरी शक्ल-सूरत, नृत्य और श्यामा संगीत पर इतना फिदा हो गया कि मुझसे प्रेम कर बैठा। उन दिनों इतना दीवाना था यह मेरा कि मैं भी दिल हार बैठी और दोनों के घर वालों की नाराज़गियों के बावजूद हमने ब्याह कर लिया। कितने चाव से मुझे ब्याह कर ले गया था ज़ालिम, पर सारे चाव चार दिन की चाँदनी साबित हुए। बहुत जल्दी अपना असली रंग दिखा दिया इसने, जो बेहद वीभत्स था। जिस नृत्य-संगीत पर रीझकर, माँ की सख़्त नाराज़गी सह कर भी इसने मेरा हाथ थामा था उसी को 'कंजरीखाना' कहने लगा था, बाहर कहीं गाना तो दूर, घर में भी मेरा गुनगुनाना तक बर्दाश्त नहीं था इसे। और दिव्या ! इस तरह 'फर्स्ट क्लास एम.ए. इन म्यूज़िक' अपराजिता बनर्जी एक बेहद मामूली औरत अपराजिता शर्मा बन कर रह गई। दिन-रात नोन-तेल-मसालों में गँधाती, मंडियों से सस्ती सब्जियाँ खरीदती, फिर भी यातनाएँ सहती मिसेज अपराजिता शर्मा।' उसकी ज़ुबान दर्द की दास्तान कह रही थी और आँखें आँसुओं का दरिया बनी हुई थीं।

मैंने पूछा, 'बाबा कहाँ हैं अप्पू? और दादा-बोदी (भाई-भाभी)?'

'बाबा नहीं रहे दीवू ! मेरे ब्याह के दो साल बाद ही चल बसे। वो जान गए थे कि उनकी 'शोना' सुखी नहीं है। तू तो जानती है न कि माँ की सूरत भी याद नहीं मुझे। बाबा ने ही मुझे और दादा को माँ बन कर पाला था, फिर कैसे सहते वो मेरी तकलीफें? चले गए। दादा-बोदी ने माँ-बाप बन कर मेरे सिर पर हाथ रखा, लेकिन अशांत ने साफ कह दिया - दोनों में से एक को चुन लो या तो अपने भाई-भाभी या पति।

'ऐसा क्यों?'

'क्योंकि जब हमारा चक्कर चल रहा था, दादा-बोदी ने बहुत बार लता ा था उसे और मुझसे दूर रहने को कहा था। ये सब कभी नहीं भूला अशांत, दादा-बोदी के बार-बार माफी माँगने पर भी।'

'फिर?'

'फिर रायपुर से तबादला करवा लिया सुशांत ने और हम देवास चले गए और अब सवा साल से यहाँ हैं। यह मेरा अशांत है न....'

'अशांत नहीं अप्पू, सुशांत !'

'नहीं, पीठ पीछे मैं उसे अशांत ही कहती हूँ, सुशांत कहलाने के काबिल नहीं है वह। हाँ, तो दीवी ! मेरा नाता दादा-बोदी से सदा के लिए टूट गया। वो फोन तक नहीं कर सकते मुझे। मैं ही चोरी-छिपे बाहर निकल कर कभी-कभी फोन कर आती हूँ उन्हें और उनकी ख़ैरियत जान लेती हूँ। अपने बारे में ज़्यादा कुछ नहीं बताती कि वो चिन्ता न करें।'

'सुशांत का कोई और बहन-भाई?' 'ब े भाईसाहब हैं, भाभी भी हैं पर उनकी इनके साथ बोल-चाल तक नहीं है। मैं भी सिर्फ़ दो बार मिली हूँ उनसे। दोनों ब े भले हैं। उन माँ-बेटे की दबंगता से बचाने के लिए भाईसाहब भाभी को दूर ले गए। ये माँ-बेटा भाईसाहब को जोरू का गुलाम कहते हैं और उनसे बात करना भी पसंद नहीं करते। वैसे एक बात बताऊँ दीवू जिस ल की के सिर पर माँ-बाप का साया नहीं होता है न, उसे इसी तरह सताया जाता है। अगलों को पता होता है न कि जितनी चाहे यातनाएँ दे लो इसे, यह यहीं रहेगी और सहेगी। मेरा कोई नहीं है दिव्या, कोई नहीं।'

वह सुबकने लगी तो मैंने उसे बाँहों में भर लिया, 'अब मैं हूँ न, तेरी सहेली, तेरी बहन। अच्छा अब अच्छे बच्चे की तरह चुप हो जा। मैं तेरे लिए पेप्सी लाती हूँ, एकदम 'चिल्ड'।'

'नहीं।' वो अपने आँसू पोंछते हुए धीरे से बोली, 'पेप्सी नहीं, मैं तो चाय पियूँगी, गमगिर्म, इलायची तुलसी वाली, जैसी अम्माँ बनाती थीं।'

मैं चाय बनाते हुए सोच रही थी कि कैसे ला कर-करके यह अम्माँ से कभी चाय, तो कभी खाना माँगा करती थी और अम्माँ भी इसे कितना दुलराती थीं। सदा इसका ख़याल रखतीं। 'बेचारी की माँ नहीं है न' ये शब्द हमेशा अम्माँ की ज़ुबान पर रहते थे। हाय ! कहाँ गए वो सोने-से दिन।

चाय पीते ही अपराजिता उठ ख ी हुई, 'अच्छा अब चलती हूँ, बहुत देर हो गई।'

'तेरी सासू-माँ ख़ूब खबर लेंगी तेरी।'

'लेने दे। तेरे साथ इतना अच्छा वक्त गुज़ार लेने की एवज़ में क ी से क ी सज़ा भी स्वीकार है मुझे।'

अपराजिता चली गई दर्द में लिपटे कई सवाल छो कर। मैंने जय को सब बताया तो वह बोले, 'यों तो सबको ही अपनी-अपनी सलीबें खुद ढोनी हैं, पर तुम उसे भावनात्मक सहारा दो दिव्या, उसका सफर कुछ तो आसान हो जायेगा।'

अपराजिता ने कहा था कि अशांत एक सा यल-अ यल अजूबा है। उसके कथन में कितनी सच्चाई है यह परखने मैं पाँचवें दिन ही उसके घर जा पहुँची। वहीं जाकर पता लगा कि वह तीसरी मंज़िल पर रहती है। सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते वह दूसरी मंज़िल की सीढ़ियों पर ही मिल गई। पानी से भरी दो बाल्टियाँ सीढ़ी-सीढ़ी करके ऊपर ले जा रही थी वह।

'ये क्या अप्पू? इतनी भारी बाल्टियाँ तू ले जा रही है ऊपर?'

'क्या करूँ? ताजा पानी नहीं आ रहा है और पानी का पंप मकान मालिक के पिछले बरामदे में है। और वो लोग घर पर नहीं हैं, इसलिए।'

'सुशांत कहाँ है?'

'वह ऊपर है, अखबार पढ़ रहा है। उसी के नहाने के लिए तो पानी ले जा रही हूँ।'

'कैसा क्रूर और आराम-परस्त इंसान है।' मेरे मन ने कहा, लेकिन मैं चुप लगा गई और बाल्टियाँ ले जाने में उसकी मदद करने लगी।

अपराजिता का घर छोटा-मोटा कबा खाना-सा लग रहा था। - एकदम निष्प्राण और अव्यवस्थित। एक अजब-से मनहूस साये ने जैसे घर-भर को ढक रखा था। उसकी सास तो मेरे अभिवादन का जवाब दिये बिना, मुँह बिगा कर वहाँ से चली गई। बेटे सुदीप ने भी नमस्ते तक नहीं की। हाँ, जब मैंने पास बुलाकर चॉकलेट्स और कलर्स के पैकेट थमाये तो उसके होठों पर बूँद-भर मुस्कुराहट चमकी और उसने आहिस्ता-से 'थैंक्स' भी कहा। सुशांत तो ज़रूरत से ज़्यादा अच्छे ढंग से मिला। मुझे प्रभावित करने की जी-प्राण कोशिश में जुटा रहा वह। उसकी कंजी आँखों में मैंने एक आदिम भूख भी देखी और कामुकता भी। मुझे याद आया कि उस दिन ठीक ही कहा था अपराजिता ने, 'औरत चाहे वह किसी भी वर्ग या उम्र की हो, अशांत की कमजोरी है। मुझे कहते हुए शर्म आती है दीवू कि गाँव से आई अपने दूर के रिश्ते की भतीजी तक पर नियत बिगा बैठा था यह कमीना।'

'आप कितनी भली हैं दिव्या जी, और कितनी हँसमुख भी। अपनी सहेली को भी समझाइये-सिखाइये न कुछ। हर वक्त मुँह सुजाए घूमती है।'

अपराजिता उसकी हरकतों और बातों से इस कदर आहत हो रही थी कि मेरा हाथ थाम कर बोली, 'चल दीवू, तुझे नीचे तक छो आऊँ। तू कह रही थी न कि तुझे जल्दी लौटना है।'

तो यह था अपराजिता के अशांत का चरित्र।

एक दिन सुबह-सवेरे अपराजिता का फोन आ गया - 'दिव्या तू आज छुट्टी ले सकती है?'

'क्यों सब ख़ैर तो है?' मुझे चिन्ता हुई।

'अरे, आज तो ख़ैर ही ख़ैर है। माँ-बेटा किसी शादी पर उज्जैन गए हैं और सुदीप स्कूल पिकनिक पर। तू आ जा प्लीज़।'

'अरे नहीं। आज मेरे दो ज़रूरी पीरियड्स हैं, अप्पू। कैसे आ सकती हूँ?'

'प्लीज़ दीवू ! एक छोटा-सा दिन ही तो माँग रही हूँ। मेरे लिए इतना भी नहीं कर सकती?'

'ठीक है, दो पीरियड्स लेकर आ जाऊँगी, खुश?'

सुशांत के बारे में ब ी अजीब-अजीब बातें बताई थीं उस दिन अपराजिता ने, 'शादी के शुरुआती दौर में एक अजब सनक सवार हो गई थी इस पर। जिससे भी मेरा परिचय कराता, कहता, 'ये मेरी पत्नी है, उम्र में मुझसे चार साल ब ी हैं, जबकि चार साल छोटी हूँ मैं इससे। पता नहीं इस नाटक से कौन-सा सुख मिलता था इसे। बेहद अपमानित महसूस करती थी मैं खुद को। आख़िर एक दिन जब अपने बॉस के सामने फिर यही बात दोहराई इसने तो मेरी भी ज़ुबान खुल गई, 'ये ठीक कह रहे हैं, सर ! दरअसल ये ब्याहने लायक हो गए थे और इन्हें कोई अच्छी ल की नहीं मिल रही थी। अचानक मै सामने आ गई तो इन्होंने मुझसे ही शादी कर ली। ब्याह के समय मेरी उम्र २२साल थी और इनकी अठारह। फिर तो क्या बताऊँ दिव्या ! बॉस साहब हँसे जा रहे थे और अशांत अपमान और गुस्से से लाल-पीला हो रहा था।'

सुन कर मुझे भी हँसी आ गई। अगले ही पल अपराजिता गंभीर हो गई, 'दिव्या ! उत्तर भारतीय ब्राह्मण के घर आई इस बंगाली ब्राह्मण की बेटी ने जी-तो कोशिश की 'एडजस्ट' करने की। माँस-माछ छो ा, दादा-बोदी को छो ा, जिस संगीत में मेरे प्राण बसते थे उसको छो ा। जी-भर कर इन लोगों की सेवा की, पर इन्हें कभी खुश न कर पाई। मैंने मार भी खाई अशांत से कई बार। माँ से दिन-रात ताने सुने, गालियाँ खाईं, ठीक है, सब कुछ सहा, लेकिन अब यह नहीं सहा जा रहा कि मेरे ही बच्चे के मन में कूट-कूटकर मेरे लिए नफरत भर रहे हैं ये लोग। वह मेरी इज़्ज़त नहीं करता, ठीक है न करे, पर इतना छोटा बच्चा है और बाप और दादी के भ काने पर कई-कई बार मुझसे बात तक नहीं करता।' बेबसी ही बेबसी थी उसके स्वर में।

'पर क्यों, अपरा? माँ को तो खुश होना चाहिए कि इतनी सुंदर और पढ़ी-लिखी बहू मिली है उन्हें।'

'उनकी नज़रों में न तो मैं पढ़ी-लिखी हूँ और न ही सुंदर। वह तो कहती रहती हैं - 'पढ़ने में कमजोर रही होगी, तभी बाप ने गाने-बजाने में एम.ए. करवा दिया, पतुरियों की तरह। मेरा मुन्ना तो एम.बी.ए. है, तभी तो ऊँचा अफसर है।' - मैं क्या करूँ? कैसे जियूँ दिव्या?'

'देख अप्पू, इन सब बातों के अलावा भी एक दुनिया है, उससे संबंध बना। अपना वजूद खोज़। मैं यह नहीं कहती कि घर-गृहस्थी छो दे, पर इसके साथ-साथ अपनी पहचान बना। फर्स्ट क्लास म्यूज़िक एम.ए. है, चुटकियों में नौकरी मिल जाएगी। इन्हें दिखा दे कि तू भी कुछ कर सकती है। अपनी जगह खुद बना, इस घर में भी और दुनिया में भी।'

'मुझे कोई नौकरी करने देगा क्या? कोशिश करना ही बेकार है।' हताश स्वर में कहा उसने तो मुझे गुस्सा आ गया।

'तुझे तो समझाना ही बेकार है, अप्पू !'

पूरा एक बरस गुज़र गया इसी तरह। उसके दुख सुनना ही मेरा प्रारब्ध बन गया था जैसे। वह अक्सर मेरे गले में बाँहें डाल कर कहती, 'तू जब से मिली है न मुझे, दीवू, मेरी तो दुनिया ही बदल गई। अब जीने का भी मन करता है। सच है, अगर किसी एक 'अपने' का भी स्नेह और साथ मिल जाए न दीवू, तो ज़िन्दगी को मायने मिल जाते हैं। नहीं?'

'नहीं, बिल्कुल नहीं, कोई मायने नहीं मिले तेरी ज़िन्दगी को। हाँ, रोने के लिए एक कंधा ज़रूर मिल गया है। अगर मेरी कोई अहमियत होती न तेरी ज़िन्दगी में, तो मेरा कहा मानती। अरे ! अब भी जाग जा। आत्म-सम्मान बनाये रखना है तो आत्म-निर्भर बन। अपने गुणों को पहचान, अपनी शक्ति को जान।'

'सब कुछ जानते हुए भी ऐसा कह रही है तू? अरे ! वो मुझे छो देगा तो कहाँ जाऊँगी मैं? पता है, कहते हुए भी शर्म आती है कि...' फिर वह पल-भर ख़ामोश रह कर सोचती रही कि आगे कहे या न कहे, फिर कह ही दिया उसने, 'कि अगर कभी 'उसके' साथ संबंध स्थापित करने में तनिक-सी भी आनाकानी करूँ तो मुझे धकियाते हुए कहता है - जो चीज़ मुझे चार टके फेंकने से मिल सकती है उसके लिए तेरे सामने गि गि ाऊँगा नहीं मैं।'

'उफ़ !' आगे कुछ सुनना-कहना व्यर्थ था।

कई दिनों से हमारी मुलाक़ात नहीं हुई थी। बस, दो-चार बार फोन किया था उसने, वह भी बाहर से। सास उसे फोन तक नहीं करने देती अब। बाहर जाने की भी इज़ाज़त नहीं क्योंकि उसने घर पर नौकरी की बात की थी। पता नहीं, कैसे बाहर निकल पाती होगी फोन करने के लिए ! मैं भी

उसके घर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी कि न जाने माँ-बेटा कैसा बर्ताव करें मेरे साथ। एक दिन साँझ ढले वह अचानक आ पहुँची, बदहाल और बदहवास-सी, 'बेवक्त आई हूँ। माफ करना दीवू, पर मौका ही अभी मिला आने का, क्या करूँ?'

'अरे, ऐसे क्यों बोल रही है? आ न बैठ। कोई नई-ताजी?'

'सब वही है रे। बासी-पुराना ढर्रा, पर मुझे टार्चर करने की एक अजीब तरकीब न जाने कहाँ से सीख कर आया है, जो अब तक की गई सारी 'टार्चरिंग' से ज़्यादा मारक है। पता है, आज कल रोज़ शाम को दफ्तर से लौटते हुए फूलों की माला ख़रीद लाता है और मेरी तस्वीर को पहना कर हाथ जो कर कहता है, 'इसकी आत्मा को शांति देना भगवान।' मैं पूछती हूँ कि ऐसा क्यों कर रहा है वह, तो कहता है, 'प्रैक्टिस कर रहा हूँ।' सर्पदंश-सा कष्ट देती है दिव्या, उसकी यह हरक़त मुझे।' घायल परिंदे की तरह कराहते हुए कहा उसने तो मैं त प उठी, 'नीचता की पराकाष्ठा है यह तो अप्पू। तेरी सास और बेटा नहीं रोकते उसे?'

'रोकते? अरे ! वो तो मज़ाक उ ाते हैं मेरा। हँसते हैं, जैसे कोई कॉमेडी सीन चल रहा हो। अब बता क्या करूँ? कैसे रहूँ उस घर में?'

'उसी घर में रह, पर साथ-साथ अपना वजूद भी कायम रख और.... '

'ये मुमकिन नहीं है, दीवू ! नहीं है मुमकिन, कैसे बताऊँ तुझे।'

बात सदा की तरह इसी बिन्दु पर आकर दम तो गई। मैं और जय दोनों ही भरसक मदद करना चाहते थे अपराजिता की। लेकिन मदद भी तो उसकी ही की जा सकती है न जो खुद भी खुद की थो ी-बहुत मदद करे। वह जाते-जाते घोर मायूसी से लिपटे चंद शब्द कह गई, 'लगता है दीवू, अब मैं नहीं, मेरी मौत की ख़बर ही तेरे पास आयेगी।'

सुन कर जान निकल गई थी मेरी। उसके जाते ही उसके भाई को मैंने फोन किया और उस पर हुए और हो रहे सारे अत्याचारों का अक्षर-अक्षर वर्णन करते हुए कहा, 'दादा ! वह आपकी इकलौती बहन है। दादा-बोदी दुःखी न हों, इसलिए आपको कभी कुछ ज़्यादा नहीं बताया उसने। वह नरक झेल रही है उस घर में। आकर उसे बचा लो, नहीं तो वह मर जाएगी।' और दूसरे दिन ही उसके भाई-भाभी आ पहुँचे मेरे घर।

'उसी की खुशी के लिए हम कभी उसके घर नहीं गए। हमें क्या पता था....' दादा ने व्यथित होकर कहा।

बोदी ने एक सवाल पूछा - 'स्त्री होकर भी स्त्री की शत्रु क्यों है अप्पू की सास, वह भी अपनी ही बहू की?'

'भावनात्मक असुरक्षा, बोदी। उसे डर होगा कि कहीं ब े बेटा-बहू की तरह ये लोग भी उसे छो न जाएँ, इसलिए विभाजन और शासन की नीति अपना ली इसने।'

उसी शाम अपराजिता के लिए सा ी, फल, मिठाई और बहुत-से उपहार लेकर हम उसके घर जा पहुँचे। जय भी साथ में थे। इतने वर्षों बाद अचानक भाई-भाभी को सामने देख कर स्तब्ध रह गई अप्पू। उसके मुख से बोल नहीं फूट रहे थे। फिर भाई से लिपटकर इतना रोई, इतना रोई कि हिचकियाँ बँध गईं।

'कौन मर गया है जो आँसुओं की नदी बहाई जा रही है यहाँ।' सुशांत की माँ ने आकर बिष-वमन किया। न किसी के अभिवादन का जवाब दिया और ना ही किसी को भाव दिया उसने।

'अब इतने सालों बाद भाई से मिली है न आंटी, तो रोना तो आएगा ही न।' मैंने उसकी वकालत की। लेकिन मेरी बात अनसुनी कर 'सेंटर-टेबल' पर धरे उपहारों को देख कर उख े स्वर में बोली, 'ये सब क्या है?'

'कुछ फल, मिठाई हैं।'

'क्यों?'

'बहन के घर आये हैं तो यूँ.... '

बोदी की बात काट कर वह चिल्लाई, 'इतने बरसों बहन का ख़याल नहीं आया? कभी कोई त्योहार तक भेजा तुमने?'

'आपने ही तो मना किया था कि न हम कुछ भेजें और न आपके घर आएँ।'

'बस अ. . . .' वह दहा ीं तो अपराजिता ने हाथ जो कर कहा, 'क्यों तमाशा कर रही हैं, माँ? ये लोग बेचारे. . . . '

'तमाशा कर रही हूँ मैं? मैं बाजीगर हूँ? मदारी हूँ? शांत, शांत बेटे, आ देख तो जरा !'

और बालीवुड फिल्मी खलनायक की तरह सुशांत ने 'एन्ट्री' ली। हाथ में पुष्प-माला और अगरबत्तियाँ थाम रखी थीं उसने, और होठों पर उँगली रख कर 'चुप' रहने का इशारा करता, बिल्कुल बगुला-भगत लग रहा था वह।

उसने अपराजिता की तस्वीर पर माला चढ़ाई और अगरबत्तियाँ सुलगाईं तो दादा त प उठे, 'यह क्या कर रहे हैं आप, सुशांत बाबू? मेरी जिंदा बहन की तस्वीर पर माला चढ़ा रहे हैं आप?'

'बहुत शौक है न तुम्हें मेरी तस्वीर पर हार चढ़ाने का? चढ़ाना ज़िन्दगी भर। आज मैं तुम्हें मर कर ही दिखा देती हूँ' कहती हुई अपराजिता बालकनी की ओर दौ ी बिजली की-सी गति से, और उसी गति से हम चारों भी उसके पीछे दौ े। अगर एक पल, सिर्फ़ एक पल की भी देर हो जाती तो वह जंगला फलांगकर नीचे कूद चुकी होती। दादा ने उसे वहाँ से खींचकर अपनी बाँहों में बाँध लिया कस कर - 'तू लावारिस नहीं है, रे खोकी (ल की), चल तू हमारे साथ।'

मैं रो रही थी, काँप रही थी। जय ने मुझे थाम रखा था। 'उन दुष्टों ने भीतर से द्वार बंद कर खुद को हर पच े से काट लिया था। हम अपराजिता को घर ले आये।

एकदम ख़ामोश हो गई थी वह। बेहद पी ादायी थे वे दो दिन। लाख कोशिश करने पर भी वह न बोल रही थी, न रो रही थी और न ही अन्न-जल ग्रहण कर रही थी। डॉक्टर ने बताया कि वह गहरे सदमे की स्थिति में है। अगर न बोली, न रोई तो 'डिप्रैशन' रोग की शिकार हो जायेगी हमेशा के लिए और दोबारा आत्म-हत्या की कोशिश भी कर सकती है। सब अपनी-अपनी तरह से कोशिश कर रहे थे।

मैंने कहा, 'मैं तुझसे बहुत नाराज़ हूँ अप्पू ! मरने चली थी? क्या गारंटी थी कि मर ही जाती? अरे, अगर न मरती और पाँच-सात हड्डियाँ टूट जातीं और अपाहिज हो जाती . . . तो कौन सँभालता तुझे? ये लोग? जिनकी चौदह साल से जी-जान से सेवा कर रही है तू, फिर भी तेरे अपने न हुए? मरना मंज़ूर है तुझे, पर इज़्ज़त से जीना नहीं। और क्या बढ़िया मिसाल कायम करने चली थी अपने जैसी पति और सास द्वारा सताई जाने वाली औरतों के लिए कि हक़ और अपनी हिफ़ाज़त के लिए संघर्ष नहीं करना, तीसरी मंजिल से कूद कर मर जाना ! क्यों? बता, क्या करूँ मैं तेरा?'

'मुझे तो यह ल का शुरू से ही पसंद नहीं था। ज़िन्दगी ख़ाक में मिला दी इसने तेरी। तू हमारी रीमा से भी बढ़ कर है हमारे लिए। अब हमारे साथ चल।' दादा ने कहा। पर किसी की, किसी भी बात का उस पर कोई असर नहीं हुआ। या तो वह आँखें बंद रखती या गूँगी गु या-सी शून्य में ताकती रहती।

तीसरे दिन सुबह-सुबह शुभम् ने आकर बताया, 'सुशांत मौसा आए हैं। बाहर ख े हैं।' मैंने देखा अपराजिता की रिक्त आँखों में ख़ौफ के घने साये लहराने लगे थे। वह अपने में ही सिमटने लगी थी। उसके गालों को स्नेह से थप-थपाकर मैं बाहर निकली। वह बरामदे में ख ा था। हाथ जो कर बोला, 'दिव्या जी ! अपनी सहेली की हरक़तें देखीं? मुझे और मेरी माँ को जेल भेजने का पूरा इंतज़ाम कर ही चुकी थी यह तो। अब हमें नहीं चाहिए ऐसी औरत। मैं तो उस दिन को दिन में सौ बार कोसता हूँ, जिस दिन मैंने इससे शादी की थी। यह धरा है इसका सामान। अब हमें कोई मतलब नहीं इससे।'

बरामदे में ही एक ओर दो सूटकेस धरे थे। मेरा जी क वा हो गया, कितना शैतान है ये इंसान? इसे तनिक शर्मिन्दगी नहीं अपने किए पर, उल्टा पत्नी पर दोषारोपण कर रहा है। उससे कुछ भी कहना-सुनना पत्थर से सिर फो ने की तरह था। वह चला गया।

'तेरा अशांत आया था, अप्पू। तेरा सामान दे गया है और सब कुछ ख़त्म कर गया है।'

'ताकि तुम नये सिरे से ज़िन्दगी शुरू कर सको।' जय ने मुस्कुराते हए कमरे में कदम रखा और कुर्सी खींच कर अपराजिता के पलंग के पास बैठ गए।

'दो शब्द मेरे भी सुन लो, अपराजिता। तुम उच्च शिक्षिता हो। अपनी क्षमताओं को पहचानो और उन्हें भुनाओ। सिर्फ़ दो चीज़ों की ज़रूरत है तुम्हें - आत्म-विश्वास और इच्छा-शक्ति की। जानती हो, गीता में कृष्ण ने कहा है 'उद्धारेदात्मनात्मानं' यानी स्वयं ही स्वयं को ऊँचा उठाओ। बाहरी साधन

तुम्हें नए विचार दे सकते हैं, लेकिन आत्म-परिवर्तन तुम्हें खुद ही करना होगा। यह भाषण या उपदेश नहीं, एक भाई की सलाह है कि अपने सारे गुणों के साथ समाज की एक सबल इकाई बनो तुम।'

और चमत्कार हो गया। उसकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह निकली, जो शायद उसके सारे अवसाद और संताप को धो गई, 'ये मेरे आखि़री आँसू हैं, भाईसाहब।' बस इतना ही कहा उसने।

समय अनवरत चलता रहा। पल-क्षण, दिन, सप्ताह महीने और सालों में बदलता रहा, बीतता रहा और अपराजिता के मन में जन्में संकल्प रंग लाते रहे। और फिर वे सब मुकाम और आयाम पाए उसने जिनकी वह हक़दार थी।

'ओह ! कहीं वक्त निकल न जाए', मैंने घ ी की ओर नज़र डाली, सवा सात बजे थे। जल्दी से उठ कर टी.वी. ऑन किया। उद्‌घोषिका घोषणा कर रही थी, 'अब आप कोकिल-कंठी अपराजिता के मधुर स्वर में उन्हीं का लिखा गीत सुनेंगे....'

अगले ही पल छोटे पर्दे पर धानी रंग के लिबास में सजी अपराजिता दिखाई दी। ताजे खिले हल्के गुलाबी गुलाब-सी मुस्कुराहट थी उसके होठों पर....अब वह गा रही थी -

नए चाँद-सूरज-सितारे सजाने को
अभी-अभी एक नया आसमाँ चुना है मैंने
अभी-अभी तो जलाई शमाँ उम्मीदों की
अभी-अभी एक नया ख़्वाब बुना है मैंने....

वह गा रही थी और मेरे मन में खुशियों के हज़ारों फूल खिलते जा रहे थे, यह सोच-सोचकर कि अब यह 'अपराजिता' है, सिर्फ़ अपराजिता, जिसने अपने नाम के मायने को सच और सार्थक साबित कर दिखाया है।

हाइकु

जवाहर इन्दु

आकुल मन
बँधाए कैसे धीर
इतनी पीर।

वृत्त सी घिरी
आतंक की छाया से
निकलूँ कैसे !

कठिन नहीं
साधना जीवन की
साध तो करो।

आँधियों रुको
दीप बुझ न जाये
तम से डरो।

उगता सूरज
भाल की बिंदी जैसे
जगती माता।

सोकर जगा
नन्हा सा बीज जो
पे है बना।

खिले नयन
फागुन मुस्काया
चले पवन।

भारती के लाल

डॉ. ओम प्रकाश वर्मा

भारती के लाल, मानव जाति के अनमोल धन,
विश्व के शत कोटि मस्तक कर रहे तुझको नमन।

हे तपस्वी दृढ़व्रती हे कर्मयोगी वीर,
सजग प्रहरी राष्ट्र के हे शक्तिशाली धीर।
विश्वामित्र, अजातशत्रु, दया-क्षमा-धृतिमान,
युग युगान्तर तक रहोगे तुम अमर अशरीर।

जागरण की ज्योति मधुमय, शांति की पावन किरण,
विश्व के शत कोटि मस्तक कर रहे तुझको नमन।

देह नश्वर है, सृजन की हर कला म्रियमाण,
मृत्यु तो केवल पहन लेना नया परिधान।
किन्तु एक अभाव का इस रिक्तता का श्रेय,
आज भी कुछ खोजता सा फिर रहा हर प्राण।

धन्य था जीवन तुम्हारा, धन्य है तेरा निधन,
विश्व के शत कोटि मस्तक कर रहे तुझको नमन।

अलस पलकों में सँजोये, सुखद निधियाँ शेष,
बढ़ रहा था प्रगति पथ पर अनवरत यह देश।
पर नियति का खेल, पूनम में अमा का योग,
मध्य निशि में ही तिरोहित हो गया राकेश।

धरणि काँपी अश्रु बरसाने लगा पीत गगन,
विश्व के शत कोटि मस्तक कर रहे तुझको नमन।

राजभाषा अधिनियम की धारा ३ (३)

कृष्ण कुमार ग्रोवर

भारत के संविधान में की गई व्यवस्था के अनुसार २६जनवरी, १९६५ से हिन्दी देश की राजभाषा तो बन गई किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए, अँग्रेजी को भी सरकारी कामकाज में कुछ कार्यों के लिए प्रयोग करने की बाध्यता बनाए रखी गई और कुछ समय के लिए ही सही भारत सरकार के कामकाज में द्विभाषिकता के दौर का सूत्रपात हुआ। वर्ष १९५५ में गठित राजभाषा आयोग की रिपोर्ट और उस पर पंत-समिति की टिप्पणियों तथा वर्ष १९६५ के बाद भी संघ के कामकाज में अँग्रेजी भाषा का प्रयोग जारी रखने संबंधी तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये आश्वासन को प्रभावी रूप देने के लिए संसद ने वर्ष १९६३ में राजभाषा अधिनियम पारित किया जो अभी लागू है। इसके अनुसार कुछ कार्य केवल हिन्दी में, कुछ केवल अँग्रेजी में और कुछ दोनों भाषाओं में किया जाना अपेक्षित है।

यथा संशोधित राजभाषा अधिनियम के अनुसार यह अनिवार्य है कि विनिर्दिष्ट काग़ज़-पत्रों को हिन्दी और अँग्रेजी दोनों में जारी किया जाए। अधिनियम की धारा ३ (३) के अनुसार दोनों भाषाएँ निम्नलिखित के लिए प्रयोग में लाई जानी हैं :

१. संकल्पों, सामान्य आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदना या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किये जाते हैं।

२. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गये प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय काग़ज़-पत्रों के लिए।

३. केन्द्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञा-पत्रों, सूचनाओं और निविदा प्रारूपों के लिए। इस नियम के फलस्वरूप भारत के राजपत्र में प्रकाशित होने वाले सभी सरकारी संकल्प, अधिसूचनाएँ, नियम आदि, चाहे वे सांविधिक हों अथवा असांविधिक, को अँग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी जारी किया जाना अनिवार्य है। इसलिए यह आवश्यक है कि भारत सरकार के मुद्रणालयों को ऐसी सामग्री दोनों भाषाओं में ही प्रकाशनार्थ भेजी जाए। इन मुद्रणालयों को भी अनुदेश दिए गए हैं कि वे ऐसे काग़ज़-पत्रों को तब तक प्रकाशित न करें जब तक कि वे उन्हें द्विभाषी रूप में उपलब्ध न हो जाएँ। जहाँ तक प्रेस विज्ञप्तियों की बात है, आमतौर पर वे मूल-रूप से पत्र-सूचना कार्यालय द्वारा, विभिन्न मंत्रालयों/विभागों से प्राप्त सामग्री के आधार पर, तैयार की जाती है। ऐसे मामलों में प्रेस सूचना ब्यूरो प्रेस विज्ञप्तियों का हिन्दी अनुवाद भी तैयार करता है। संबंधित मंत्रालय/विभाग से अपेक्षा की जाती है कि वे ब्यूरो की सुविधा के लिए सामग्री हिन्दी में भी देने की व्यवस्था करें। मंत्रालय/विभाग कुछ प्रेस विज्ञप्तियाँ स्वयं भी तैयार करते हैं और उन्हें प्रचार के लिए पत्र सूचना कार्यालय को भेज देते हैं। ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य है कि ये द्विभाषिक रूप में ही भेजी जाएँ। पत्र सूचना कार्यालय भी समय-समय पर परिपत्र जारी करके मंत्रालयों आदि का ध्यान इस नियम की ओर दिलाता रहा है। प्रशासनिक और अन्य रिर्पोटें दोनों भाषाओं में जारी करने के लिए ०३दिसम्बर, १९५५ को जारी किए गए राष्ट्रपति जी के आदेश में भी कहा गया था। अधिनियम की धारा ३ (३) के अनुसार प्रशासनिक और अन्य रिर्पोटें, जिनमें सांख्यिकीय रिर्पोटें भी शामिल हैं, हिन्दी तथा अँग्रेजी दोनों भाषाओं में जारी की जानी अनिवार्य हैं। यही अनिवार्यता संसद के किसी एक या दोनों सदनों में प्रस्तुत की जाने वाली रिर्पोटों के बारे में भी है। गृह मंत्रालय के दिनांक १६-५-१९७० के अनुदेश में इस बात को दोहराया गया कि सभी मंत्रालय आदि सुनिश्चित करें कि संसद के पटल पर रखे जाने वाले काग़ज़ात में अँग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी अनुवाद भी अवश्य प्रस्तुत किए जाएँ। तथापि यदि किसी विशेष मामले में कुछ अत्यन्त विशेष कारणों

से अँग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी अनुवाद पेश करना संभव नहीं है तो अँग्रेजी रूपान्तर पेश करते समय एक संक्षिप्त विवरण भी राज्य/लोकसभा के पटल पर रखा जाए जिसमें उन कारणों का उल्लेख किया जाए जिनकी वज़ह से अँग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

राजभाषा अधिनियम की धारा ३ (३) में उल्लिखित सामान्य आदेश प्रायः सभी छोटे-ब` कार्यालयों द्वारा कभी न कभी जारी किए जाते हैं और यदि इसकी परिभाषा को ध्यान में रखें तो, यह संभावना प्रतीत होती है कि अन्य विशेष काग़ज़-पत्रों की तुलना में इनकी संख्या अधिक भी हो सकती है। स्थायी प्रकार के सभी आदेश, निर्णय, अनुदेश, पत्र, ज्ञापन, नोटिस, परिपत्र आदि जो सरकारी कर्मचारियों के समूह अथवा समूहों के संबंध में या उनके लिए हों, 'सामान्य आदेश' कहलाते हैं। इस परिभाषा से लगता है कि राज्य सरकारों को भेजे जाने वाले सभी परिपत्र भी इनमें शामिल हैं और वे द्विभाषी रूप में जारी होने चाहिए। परिपत्र के दोनों पाठों को प्रामाणिक माना जाता है (न कि एक पाठ को दूसरे का अनुवाद) और इसलिए दोनों पाठों पर संबंधित प्राधिकारी के हस्ताक्षर किए जाने अपेक्षित हैं। केन्द्रीय सराकर द्वारा निष्पादित सभी संविदाएँ और करार या उनकी ओर से जारी किए जाने वाले सभी लाइसेंसों, परमिटों, नोटिसों और टेंडरों के कार्य के लिए हिन्दी और अँग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है। अतः यह भी अपेक्षित है कि इस प्रकार के सभी फार्म आदि भी हिन्दी और अँग्रेजी दोनों भाषाओं में तैयार करके मुद्रित किए जाएँ, ताकि उन्हें दोनों भाषाओं में एक साथ जारी किया जा सके। इनमें से कुछ काग़ज़ सांविधिक प्रकार के भी हैं। इसलिए इनका अनुवाद विधि मंत्रालय के विधायी विभाग के राजभाषा खंड द्वारा किया जाता है। केन्द्रीय अधिनियमों, नियमों और विनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद भी इसी खंड द्वारा किया जाता है। जहाँ तक अन्तरर्राष्ट्रीय करारों का संबंध है ये आदेश दिए गए है कि संबंधित मंत्रालय/विभाग संधियों और करारों के अँग्रेजी पाठों का हिन्दी अनुवाद तैयार करे और विदेश मंत्रालय के विधि और संधि प्रभाग से उनकी जाँच कराएँ। भारत में हस्ताक्षर की जाने वाली संधियों और करारों में अँग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का प्रयोग किया जाए। तथापि निम्नलिखित के लिए हिन्दी में निष्पादित न करने की छूट है :

१. विदेशों में की गई संधियाँ और करार,
२. तत्काल प्रभाव की संधियाँ जिनका समयाभाव के कारण हिन्दी अनुवाद कराना संभव नहीं,
३. बहुपक्षीय अभिसमय (लिखित अनुबंध), और
४. रक्षा मंत्रालय की संधियाँ और करार

किंतु उपर्युक्त (१), (२) और (३) में उल्लिखित काग़ज़ों का अनुवाद अभिलेख में रखने के लिए करवाया जायेगा। अधिनियम के अनुसार सभी करारों और संधियों के लिए हिन्दी और अँग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग अनिवार्य है फिर भी निर्वचन के संबंध में कोई कठिनाई या मतभेद न हो इसके लिए किसी एक पाठ को प्रामाणिक समझना फिलहाल वांछनीय होगा (वैसे दोनों भाषाओं के पाठों के निर्वचन में भी निर्वचन के हारमोनियस कंस्ट्रक्शन के सिद्धांत के अनुसार कठिनाई नहीं होगी)। इसलिए अँग्रेजी से भिन्न भाषा-भाषी देशों के साथ उनकी अपनी भाषा, अँग्रेजी और हिन्दी में किए जाने वाले करारों और संधियों में यह व्यवस्था करना उचित होगा कि विवाद की स्थिति में अँग्रेजी पाठ प्रामाणिक होगा। अँग्रेजी भाषी देशों के साथ किए जाने वाले करारों और संधियों में हिन्दी और अँग्रेजी दोनों ही भाषाओं का प्रयोग कराने और दोनों पाठों को प्रामाणिक मनवाने के प्रयत्न किए जाएँ। यदि दूसरा पक्ष इस बात पर आग्रह करे कि केवल अँग्रेजी पाठ को प्रामाणिक माना जाए तो उसे फिलहाल स्वीकार कर लिया जाए।

राजभाषा अधिनियम की धारा ३ (३) को यदि गहराई से देखा जाए तो प्रतीत होता है कि विशेष काग़ज़ात में दोनों भाषाओं के प्रयोग के पीछे सरकार की यह मंशा है कि चूँकि स्वतंत्रता के बाद काफी समय तक सरकार का पूरा कार्य केवल अँग्रेजी में ही होता रहा है और वर्ष १९६५ के बाद भी जो द्विभाषिकता का दौर शुरू हुआ है वह कुछ लम्बा चल सकता है, इसलिए जब भी सरकार में ऐसी स्थिति आए कि सारा काम केवल हिन्दी में होने लगे और उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालयों में भी न्यायिक कार्य की भाषा हिन्दी हो जाए तो कहीं पुराने काग़ज़ों को देखने में कठिनाई ना हो। उस समय यदि पहले के किसी करार या सामान्य आदेश का संदर्भ आए तो अँग्रेजी के साथ-साथ उसका प्राधिकृत हिन्दी पाठ भी उपलब्ध हो। जिस प्रकार के काग़ज़ों का उल्लेख धारा ३ (३) में किया है वे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और उनकी आवश्यकता काफी समय व्यतीत होने के बाद भी प

सकती है। इस धारा में उल्लिखित काग़ज़ात में से अधिकतर का उल्लेख १९५५ में जारी किए गए राष्ट्रपति जी के राजभाषा संबंधी दूसरे आदेश में भी किया गया था, किन्तु अधिनियम के लागू हो जाने के बाद भी काफी समय तक धारा ३ (३) का अनुपालन सुनिश्चित नहीं हुआ। इस धारा की अनिवार्यता को रेखांकित करने के लिए इसके अँग्रेजी रूपान्तर में 'शैल' (Shall) शब्द का प्रयोग किया गया है। यह स्पष्ट है कि यदि कोई करार आदि केवल एक भाषा में किया जाता है तो वह कानूनी तौर पर अवैध होगा क्योंकि उसका निष्पादन राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ३ (३) के अनुसार नहीं हुआ, इसलिए धारा ३ (३) का समुचित अनुपालन भारत सरकार के प्रत्येक कार्यालय के लिए नितान्त आवश्यक है।

उल्लेखनीय है कि जब वर्ष १९७६ में राजभाषा नियम (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) बनाये गए थे तो उनके नियम ६ में यह उपबंध भी किया गया कि अधिनियम की धारा ३ (३) में विनिर्दिष्ट सभी दस्तावेज़ों के लिए हिन्दी और अँग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसे दस्तावेज़ हिन्दी और अँग्रेजी दोनों में ही तैयार किए जाते हैं, निष्पादित किए जाते हैं, और जारी किए जाते हैं। सरकार ने अधिनियम और नियम तो बना दिए किंतु उनके अनुपालन की ओर शुरू से ध्यान नहीं दिया गया। संसदीय राजभाषा समिति की तीनों उपसमितियों ने १९७६ में जब निरीक्षण दौरे शुरू किए तो पाया कि भारत सरकार के कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बहुत कम है और समिति ने धारा ३ (३) की अनिवार्यता की ओर भी ध्यान दिलाया। उसके बाद इस दिशा में गम्भीर प्रयत्न शुरू हुए। अनुवाद व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाने लगा। इससे स्थिति में सुधार हुआ और मंत्रालयों/विभागों में विशेष काग़ज़-पत्र दोनों भाषाओं में जारी किये जाने लगे। बाद में निचले कार्यालयों में भी अनुवादकों की नियुक्ति के बाद धारा ३ (३) का अनुपालन करने के प्रयास होने लगे। लेकिन यह भी स्वीकार करना प ेगा कि छोटे कार्यालयों में जहाँ स्टाफ की संख्या कम होती है, पूर्णकालिक अनुवाद व्यवस्था उपलब्ध न होने के कारण विशेष काग़ज़ात द्विभाषी रूप में जारी करने में कठिनाई होती है। अनेक मंत्रालयों के लगभग प्रत्येक राज्य में क्षेत्रीय कार्यालय हैं जहाँ स्टाफ की संख्या सीमित होने के कारण अनुवादकों को बहाल नहीं किया जा सकता। उन कार्यालयों द्वारा भी, तकनीकी समेत कई प्रकार की रिर्पोटें तैयार की जाती हैं। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय के प्रादेशिक कार्यालयों की रिर्पोटों में अनेक शब्द विशुद्ध आयुर्विज्ञान के होंगे और इन्हें मूल रूप में अँग्रेजी में बनाने वाले अधिकारी हिन्दी के उच्च कोटि के और निर्धारित पारिभाषिक शब्दावली के ज्ञान के बिना हिन्दी में तैयार नहीं कर सकते। संसदीय राजभाषा समिति ने अपनी रिपोर्ट के पहले खंड में ही अनुवाद व्यवस्था और पारिभाषिक शब्दावली की समस्याओं पर विचार करते हुए धारा ३ (३) के समुचित अनुपालन के लिए अनेक सिफारिशें भी कीं। समिति का विचार था कि अनुवाद कार्य के लिए यह अपेक्षित होगा कि विभिन्न विषयों से संबंधित शब्दावलियाँ और अन्य सहायक तथा संदर्भ साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों। इसके साथ ही मानक शब्दावलियों में विभिन्न अँग्रेजी शब्दों के लिए जो हिन्दी पर्याय दिए गए हैं अथवा दिए जायेंगे उनका ही प्रयोग सुनिश्चित किया जाए ताकि राजभाषा का एक मानक रूप उभरकर आए। इसके अतिरिक्त अनुवाद कार्य के लिए अत्यन्त सुयोग्य एवं अनुभवी अधिकारियों को नियुक्त करना और उन्हें अपने विषय संबंधी विशेष अनुवाद कार्य के लिए प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध कराना भी आवश्यक होगा। अनुवाद के स्तर को ऊँचा उठाने की दृष्टि से अनुवादकों आदि के भर्ती नियमों की पुनरीक्षा इस प्रकार से की जानी चाहिए जिससे कि विभिन्न प्रकार के विज्ञान, विधि, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि की योग्यता वाले व्यक्ति भी हिन्दी और अँग्रेजी में उच्च प्रवीणता होने पर विभिन्न राजभाषा सेवाओं व उच्च पदों पर भर्ती के लिए आकर्षित किए जा सकें। इससे तकनीकी विषयों के अनुवाद का स्तर भी सुधरेगा। इस प्रकार की अनेक सिफारिशें थीं जिन्हें स्वीकार करते हुए राष्ट्रपति जी के आदेश ३०-१२-१९८८ को जारी हुए। इसी बीच धारा ३ (३) के अनुपालन के लिए भारत सरकार के राजभाषा विभाग और संसदीय राजभाषा समिति द्वारा निरन्तर बल दिया जाता रहा और अब भी दिया जा रहा है। राजभाषा विभाग द्वारा वर्ष २००८-२००९ के लिए जारी किए गए वार्षिक कार्यक्रम में राजभाषा नीति संबंधी प्रमुख निदेशों में पहला ही है कि 'राजभाषा अधिनियम, १९६३ की धारा ३ (३) के अंतर्गत संकल्प, सामान्य आदेश नियम, अधिसूचनाएँ, प्रशासनिक तथा अन्य रिर्पोटें, प्रेस विज्ञप्तियाँ, अनुज्ञापत्र, टेंडर नोटिस तथा टेंडर फार्म आदि द्विभाषी रूप में जारी किए जाएँ। किसी

प्रकार के उल्लंघन के लिए हस्ताक्षर करने वाले अधिकारी को ज़िम्मेदार ठहराया जायेगा।' अनेक संगोष्ठियों तथा बैठकों में भी धारा ३ (३) के बारे में चर्चा होती है। राजभाषा विभाग तथा संसदीय राजभाषा समिति द्वारा निर्धारित रिर्पोटों/प्रश्नावलियों में भी धारा ३ (३) के अंतर्गत आने वाले दस्तावेज़ों के बारे में आँक` माँगे जाते हैं। २० और २१ मई, १९८८ को कोलकाता में आयोजित प्रथम अखिल भारतीय बैंक राजभाषा सम्मेलन में एक चिन्तन सत्र धारा ३ (३) के अनुपालन के संबंध में रखा गया था। अब यह सभी स्तरों पर महसूस किया जाने लगा है कि धारा ३ (३) का प्रावधान अंततः राजभाषा हिन्दी में ही कार्य करने की बाध्यता को लागू करने के लिए किया गया है, क्योंकि इसमें उल्लिखित कागज़ात तो पहले भी अँग्रेजी में ही तैयार किए जा रहे थे और अब भी होते रहेंगे लेकिन साथ ही साथ उन्हें हिन्दी में भी तैयार करने की बाध्यता भी है। चूँकि दोनों भाषाओं में कागज़ात तैयार करने की अनिवार्यता से श्रम और समय अधिक लगता है, इसलिए कार्यालयों द्वारा यह माँग भी निरन्तर आती रही है कि उन्हें एक ही भाषा (अर्थात् हिन्दी में, जो देश की राजभाषा है) में तैयार करने की अनुमति दी जाए। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए ३०-९-१९८८ को पारित अपने प्रतिवेदन के चौथे खंड में समिति ने सिफारिश की कि धारा ३ (३) का शत-प्रतिशत पालन किया जाए और इसके लिए रिर्पोट के पहले खंड में की गई तत्संबंधी सुविधाओं के बारे में सिफारिशों पर और राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति के बारे में शीघ्र कार्यवाही की जाए। इस सिफारिश को राष्ट्रपति जी ने स्वीकार कर लिया और अनुकूल आदेश जारी किए। साथ ही समिति ने यह सिफारिश भी की कि 'क' क्षेत्र में धारा ३ (३) में उल्लिखित दस्तावेज़ (संसद के समक्ष रखे जाने वाले कागज़ात को छो कर) केवल हिन्दी में जारी किए जाएँ। किंतु राष्ट्रपति द्वारा इस सिफारिश को स्वीकार नहीं किया जा सका क्योंकि राजभाषा अधिनियम की धारा ४ में ही यह उपलब्ध किया गया है कि राष्ट्रपति ऐसा कोई आदेश नहीं दे सकेंगे जो राजभाषा अधिनियम की धारा ३ के उपबंधों से असंगत हो। इसके बावजूद इस धारा के अनुसार दोनों भाषाओं की अनिवार्यता से होने वाली कठिनाई और कार्यालयों के विरोध को ध्यान में रखते हुए वर्ष १९९७ में प्रस्तुत संसदीय समिति के प्रतिवेदन के छठे खंड में पुनः सिफारिश की गई कि राजभाषा अधिनियम में संशोधन किया जाए जिससे कि 'क' और 'ख' क्षेत्रो में स्थित कार्यालयों द्वारा उक्त धारा के अंतर्गत जारी किए जाने वाले केवल हिन्दी में ही जारी किए जा सकें। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो समिति ने पहले अपनी सिफारिश को 'क' क्षेत्र तक ही सीमित रखा था किंतु अब उसने 'ख' क्षेत्र को भी इसमें शामिल कर लिया किंतु इस पर भी सरकार का दृष्टिकोण वही है। जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा और बचे-खुचे अधिकारियों का हिन्दी प्रशिक्षण पूरा हो जाएगा, धारा ३ (३) में अँग्रेजी की अनिवार्यता शेष बचे 'ग' क्षेत्र से हटाने का प्रस्ताव भी आएगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होगा कि धारा ३ (३) का पूर्ण अनुपालन अंततः राजभाषा हिन्दी के हित में है और इसलिए भारत सरकार का राजभाषा विभाग भी समय-समय पर जारी किए गए वार्षिक कार्यक्रमों में इस ओर ध्यान दिलाता रहा है। विभाग द्वारा निर्धारित तिमाही प्रगति रिर्पोटों में इसके बारे में जानकारी माँगी जाती है। विभिन्न मंत्रालयों की हिन्दी सलाहकार समितियों की बैठकों में भी इस धारा के अनुपालन की स्थिति पर चर्चा होती है और मंत्रीगण इसके उल्लंघन को गंभीरता से लेते हैं। संसदीय राजभाषा समिति तो शुरू से ही इस ओर ध्यान देती रही है। वर्ष १९९३ में जब यह महसूस किया गया कि कुछ अधिकारी इसके अनुपालन के प्रति गंभीर नहीं हैं अथवा इसके उल्लंघन के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं बता सके तो दूसरी उपसमिति ने ऐसे अधिकारियों से लिखित स्पष्टीकरण लेने को कहा। इसके बाद तो वर्ष १९९५ में निर्धारित निरीक्षण प्रश्नावली में संशोधन करके यह भी कहा जाने लगा कि यदि इस संबंध में नियमों का उल्लंघन हुआ है तो इसके लिए उत्तरदायी अधिकारियों के नाम और पदनाम भी बताए जाएँ और इस कारण उनके ख़िलाफ यदि कोई कार्यवाही की गई है या अपेक्षित है तो उसका पूरा ब्यौरा दिया जाए। निश्चय ही निरीक्षणाधीन कार्यालय जब इस प्रकार की सूचना एकत्रित करता है तो उसे मामले की गंभीरता का एहसास भी होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि २३-९-२००० को प्रधानमंत्री जी ने मंत्रिमंडल के सदस्यों को भी संदेश जो भेजा है, उसमें कहा गया है कि केन्द्रीय हिन्दी समिति की दि. २२-९-२००० को हुई बैठक में राजभाषा हिन्दी के सरकारी कामकाज में प्रयोग की वर्तमान स्थिति की समीक्षा की गई और इस बात पर चिन्ता व्यक्त की गई कि संविधान में संघ की राजभाषा हिन्दी संबंधी प्रावधानों के बारे में हमारे अधिकारियों/

कर्मचारियों द्वारा उठाए गए कदमों में बहुत कमियाँ हैं। इस परिप्रेक्ष्य में राजभाषा हिन्दी में काम किए जाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने के लिए जो चार कदम उठाने के लिए प्रधानमंत्री जी ने कहा उनमें यह भी कहा गया कि राजभाषा अधिनियम की धारा ३ (३) का अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। इसकी उपेक्षा करने वाले अधिकारियों को लिखित परामर्श दिया जाए कि वे भविष्य में इस प्रवृत्ति से बचें। आशा की जानी चाहिए कि इस संदेश के शब्दों और भावना का सम्मान करते हुए पूरे देश में धारा ३ (३) का तब तक पूर्ण अनुपालन होता रहेगा जब तक कि इसमें उपयुक्त संशोधन करके अँग्रेजी की अनिवार्यता सभी क्षेत्रों के लिए हटाई नहीं जाती।

हिन्दी का हृदय काफी विशाल है

एस. के. जैन लौंगपुरिया

हिन्दी का हृदय काफी विशाल है
इसका हमें जितना ख़्याल नहीं
जितना इसको ख़्याल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।
यह हम सबको सजाती और सँवारती है
खुद में फटे हाल रह जाती है
इसका हमें मलाल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।
यह सभी भावनाओं को अपनाती है
उनका विस्तार कराती है
फिर क्यों इस पर बवाल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।
यह हमारे आपसी प्रेम का प्रसंग है
सभी प्रांतीय भाषाओं के संग है
तब इसका यह हाल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।
यह हमारी संस्कृति का सिंदूर है
फिर भी अपनेपन से दूर है
इसीलिए ये बेहाल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।
यह हमारे देश की आन, बान और शान है
इसकी अपने-आप में एक पहचान है
यह सिर्फ़ भाषा ही नहीं बल्कि लोकपाल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।
लगता है इसकी किस्मत ही हेठी है
जो अँग्रेजी के अंगारों पर बैठी है
जो इसके लिए ग्रह-काल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।
जिस दिन ये राष्ट्रभाषा बन जाएगी
देश की तक़दीर ही बदल जाएगी
अब तक यह सम्भव नहीं हुआ
तो ज़रूर कुछ चाल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल हाल है।
अपने-अपने स्तर पर सभी इसे भुनाते हैं
यूँ तो सभी इसको अपना बताते हैं
पर इसकी सच में कौन करता देख-भाल है
यह अपने-आप में एक सवाल है
हिन्दी का हृदय काफी विशाल है।

माघ की एक सुबह

विजय सिंह नाहटा

माघ की ठिठुरती सुबह
धुँध में नहायी सुदूर प्राची की पहा ी
टिमटिमाते स्ट्रीट लैम्पपोस्ट
थके-माँदे सितारे, अलसाये
हाँफता-सा लटकता चाँद।
आद्य भोर की किसी जहाज का गुनगुना संगीत
महागर्भ से गोया फूटती सुगबुगाहट
नीरवता में अंकुरित कोलाहल।
अंगार-सा दहकता उठता सूरज
डूंगर के पार्श्व से छिटकता रक्तिम आलोक
समर्पण को मचलती प्रार्थनाएँ
लो ! जाग उठी वन-देवियाँ।

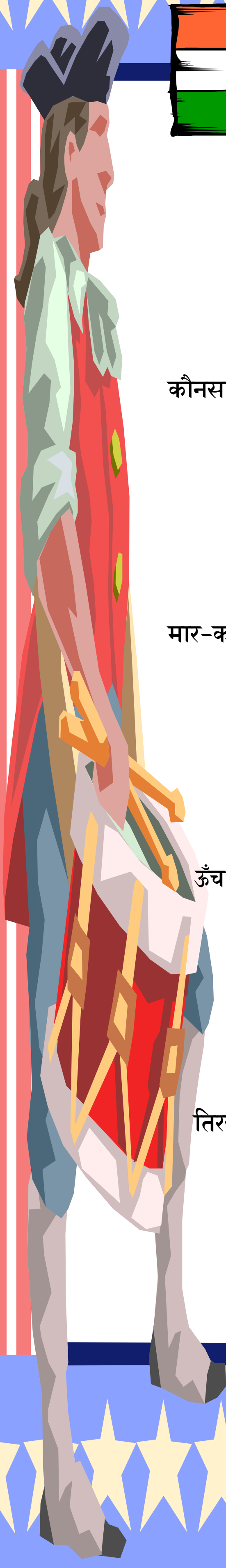

विडम्बना

राजीव रंजन

प्यार त्याग का कहाँ मिलेगा
ऐसा समावेश
सुख दुःख साथ जहाँ रहते थे
ऐसा था मेरा देश।।
कौनसा धर्म तुम्हें सिखलाता
नारी का करो अपमान,
कौनसा नेता तुम्हें भ काता
लो शिशुओं की जान,
भूल गए गुरुओं की शिक्षा
मन को नहीं तुम्हारे क्लेश।
सुख दुःख साथ जहाँ रहते थे
ऐसा था मेरा देश।।
मार-काट और घृणा परस्पर
धर्म नहीं सिखलाते,
धर्म के ठेकेदार हमें
ल ने को हैं उकसाते,
गौतम नानक दे गए हमको
सत्य अहिंसा का संदेश।
सुख दुःख साथ जहाँ रहते थे
ऐसा था मेरा देश।।
ऊँच-नीच और जाति-पाँति में
क्या तुम पाओगे,
धर्म निरपेक्षता का नारा
कब का भूल जाओगे;
त्यागो सिख-हिन्दू-मुस्लिम का चोगा
पहनो मानवता का वेश।
सुख दुःख साथ जहाँ रहते थे
ऐसा था मेरा देश।।
तिरस्कार न करो किसी का
ना ही किसी का मन मैला,
बढ़ जाएगा भेद भाव
और पल में रोग फैला;
कैसे करोगे उपचार
क्या बदलोगे परिवेश।
सुख दुःख साथ जहाँ रहते थे
ऐसा था मेरा देश।।

संघर्ष

ममता खरे

माँ बेवक्त तान्या को आया देख अवाक् रह गईं। 'तू....इस वक्त? यहाँ....?'

कंधे से टँगा पर्स उतार कर मेज़ पर रखते हुए तान्या मुस्कुराईं 'हाँ मैं। इसमें आश्चर्य की क्या बात है?'

'आश्चर्य की तो बात ही है। इस वक्त रोहन को तू किसके भरोसे छो आई? उसके तो खाने का वक्त होगा?'

'हाँ है, माँ खिला रही हैं। मैं सारा इंतज़ाम करके ही घर से निकली हूँ।'

'फिर भी....उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत प जाए तो?'

'तो मालती को बैठा आई हूँ इसके लिए। ओ हो माँ, तुमको मेरा आना अच्छा नहीं लगा क्या?' तान्या ने मुँह फुला कर पूछा।

माँ कमला देवी नरम प गईं। तान्या का हाथ पक कर अपने पास बैठाते हुए दुःखभरी आवाज़ में बोलीं 'रोहन की बीमारी ने मेरा दिल ही तो दिया है तनु। ऐसा स्वस्थ, लम्बा-चौ ा ल का, उसका कभी एक्सीडेन्ट हो सकता है यह तो किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था। तेरी बात सोच कर हम और भी ज़्यादा चिन्तित हैं बेटी। तुम लोगों की सारी उम्र प ी है....'

'यही सोच कर तो मैं भइया से सलाह लेने आई हूँ।' तनु ने हाथ बढ़ा कर पर्स अपने पास खींच लिया।

कमला देवी शंकित हुईं, 'कैसी सलाह?'

'भइया से पूछना था कि एक्सेल गुडस् में कुछ पोस्टस् निकली हैं, किसी को वहाँ जानते हों तो करवा दें।'

'किसकी बात कर रही है? तू करेगी?'

'हाँ, इस तरह से रात-दिन रोगी की सेवा मैं नहीं कर सकती हूँ माँ। मेरा दिल घब ाता है।' तान्या उठ कर खि की के सामने ख ी हो गई। 'मैं इन छः महीनों में थक गई हूँ। घर का एटमॉस्फियर मुझे काटने को दौ ता है।'

'होश में तो है न तू? ये सब क्या कह रही है? तेरा पति बीमार है और तू नौकरी की बात सोच रही है? पागल हो गई क्या तनु?' माँ कठोर हो कर बोलीं।

'पागल नहीं हुई हूँ तो हो जाऊँगी। उस घर में मुझसे अब एक मिनट रहते नहीं बन रहा है।'

'तनु ! यह सब क्या बक रही है? सास से ल कर आई है क्या?'

तनु हँसी, 'सास क्या ल सकती है? नहीं। किसी और से ल कर नहीं आई हूँ। छः महीनों से अपने-आप से ल ते-ल ते इस नतीज़े पर पहुँची हूँ।'

'तू नौकरी करेगी तो रोहन की देख-भाल कौन करेगा?'

'नर्स रख दूँगी या उसे किसी नर्सिंग होम में रख दूँगी।' कमला देवी ने तनु की बात सुन कर सिर पीट लिया, 'कैसी बात कर रही है? रोहन को....रोहन को नर्सिंग होम में रख देगी? ऐसी कौन-सी मुसीबत आ गई है जो तेरा नौकरी करना ज़रूरी है? पैसों की तो कोई बात है नहीं न?'

'माँ ! तुम समझती क्यों नहीं हो? पैसों की बात भले न हो पर मेरी बात तो सोचो। क्या मैं सारी उम्र एक पंगु पति की सेवा करते-करते गुज़ार दूँ? बीमार आदमी के साथ रहते-रहते मैं भी बीमार प जाऊँ? मेरी ज़िन्दगी क्या इतनी ही फालतू है? नहीं....मैं अपनी ज़िन्दगी को मिटने न दूँगी। मैं अपने को उस मनहूस घर की चारदीवारी से बाहर निकाल लाऊँगी।'

'ठण्डे दिमाग से जरा सोच....'

'सोच लिया है। मैंने रोहन को छो देने का फैसला कर लिया है माँ।' तान्या ने दृढ़तापूर्वक कमला देवी की बात काटते हुए कहा। आगे बढ़ कर पर्स उठाया और पर्दा हटा कर जाने लगी तभी ब ा भाई तुषार आ गया। 'अरे तनु ! इतनी रात को तू यहाँ? सब ठीक तो है न? हाउ इज़ रोहन?' तुषार ने वातावरण की हवा में भारीपन महसूस कर एक बार बहन को और एक बार माँ को देखा।

कमला देवी आँचल से नाक पोंछते हुए भर्राई आवाज़ में बोलीं, 'तेरी बहन पागल हो गई है मुन्ना, इसे समझा। यह हमारी नाक कटवाने पर तुली है।' तुनक कर तान्या ने माँ की तरफ देखा, 'अक कर बोली, 'नाक-वाक इतनी जल्दी और ऐसे नहीं कटती है। और फिर. . . .तुम कैसी माँ हो? तुम्हें मेरा कष्ट दिखाई नहीं दे रहा है? मैं क्यों उस घर के अभिशाप को ज़िन्दगी-भर ढोऊँ?'

'अरे कलमुँही, तू उस घर की बहू है। तेरे सिवा और कौन ढोएगा उस घर के सुख-दुःख के बोझ को? वह बुढ़िया तो मर ही जायेगी. . . .'

'मरे। कोई अमृत पीकर तो आई नहीं है।'

कमला देवी को गुस्सा आ गया, 'वाह ! वाह ! क्या शिक्षा पाई है? पढ़-लिख कर तूने यही सीखा है? छो इन बातों को। रोहन से तो प्रेम करके शादी की थी - कहाँ गया वह प्रेम? दो ही साल में ख़त्म हो गया? जब हम मना कर रहे थे तब तो रोहन के लिए जान देने जैसी ब ी-ब ी बातें करती थी और आज जब सचमुच जान देने का वक्त आया तो तू भाग रही है?'

तुषार की समझ में कुछ आने लगा था। हाथ उठा कर माँ को शांत करते हुए उसने बहन को बाँहों के घेरे में लेकर कहा, 'आ, तू हमारे कमरे में आ, वहाँ चल कर बात करते हैं। चाय पियेगी?' फिर ऊँची आवाज़ में नौकर को पुकार कर दो प्याली चाय लाने को कह कर तनु को अपने कमरे में ले आया।

बगल वाले कमरे में सुजाता बच्चों को होम-वर्क करवा रही थी। आँख उठा कर उसने तनु को देखा, मुस्कुराई। सास ननद की बहस की भनक उसे लग चुकी थी पर बच्चों को छो कर जा नहीं सकती थी इसलिए उसने तुषार को भेज दिया था। बच्चे तनु को देखते ही उछल प , 'बुआ, बुआ।' सुजाता ने दोनों को पक कर बैठाते हुए कहा, 'पहले होम-वर्क ख़त्म करो। बुआ अभी हैं।'

दरवाजे के सामने रुक कर तनु ने हाथ हिलाया, 'पढ़ लो, मैं हूँ अभी।'

'बुआ चॉकलेट?' 'वह भी है पर्स में' तनु ने पर्स थपथपाया। 'भाभी जल्दी आओ, सीरियस बात है।' और भाई के पीछे-पीछे उनके बेड-रूम मे चली गई।

'बैठ - हाँ, अब बता क्या बात है?' तुषार ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

'भइया, मैं सर्विस करना चाहती हूँ। एक्सेल गुड्स में है तुम्हारी कोई जान-पहचान? वहाँ के लिए पोस्ट निकली है।'

कुछ सोच कर तुषार ने कहा, 'हाँ, मिस्टर भट्टाचार्य से मेरा अच्छा परिचय है। पिछले महीने ही मैंने उनके कहने पर अपनी कंपनी में उनके साले के किसी आदमी को रखा है। क्या पोस्ट है? तूने तो कम्प्यूटर कोर्स भी कर रखा है. . . .'

'हाँ, ऐसी ही पोस्ट है। प्लीज़ भइया, काम मुझे करना ही है। घर पर रहते-रहते मैं थक चुकी हूँ।'

'रोहन से पूछा?' तुषार ने कोमल स्वर में कहा।

सिर झुका कर तनु बोली, 'एक फुली पैरालिटिक आदमी जिसका न हाथ हिलता है न पाँव, जिसका ब्रेन तक काम नहीं करता है, बोल नहीं सकता है, उससे क्या पूछूँ?'

'आय एम सो सॉरी।'

'डोन्ट पिटी भइया. . . .कम से कम मुझ पर तरस मत खाओ। बल्कि मुझे अपने पैरों पर ख होने में मदद करो।' तान्या का गला भर आया।

तुषार सिगरेट बुझा कर उसके पास आकर बैठा। तान्या को अपने से सटा लिया। बोला, 'हिम्मत मत हार। मैं तेरी पूरी मदद करूँगा। मैं तेरी परेशानी समझता हूँ. . . . रो मत।'

गर्दन उठा कर भरपूर नज़रों से भाई की ओर देखा तान्या ने, 'रोना मैंने छो दिया है भइया। मैंने अपने जीवन का रास्ता चुन लिया है. . . .मैं अब किसी के बहकावे में आने वाली नहीं।'

तुषार को याद आया, दो साल पहले यही बातें कही थीं तान्या ने जब कमला देवी ने उसे रोहन से शादी करने से रोकना चाहा था। पर तुषार चुप रहा। इस वक्त पिछली बातों का ज़िक्र करना मूर्खता होगी। तुषार तान्या के बोलने की इंतज़ारी में चुप रहा। पर तान्या अनमनी-सी बैठी अपने पर्स के स्ट्रैप से खेलती रही। नौकर चाय लेकर आया। पुराना नौकर है, तान्या को देख कर मुस्कुराया. . . 'जमाई राजा कैसे हैं दीदी?'

'वैसे ही।'

'आज तो डॉक्टर आये होंगे , क्या बोले?' नौकर कन्हैया ने मेज़ पास उठा कर रखते हुए पूछा।

'डॉक्टर? डॉक्टर कहते हैं ये अब ऐसे ही रहेंगे।....जब तक जिन्दा रहेंगे माँस-पिण्ड की तरह प` रहेंगे। डरो मत कन्हाई भाई, जान का कोई ख़तरा नहीं है।'

तुषार को जैसे कुछ याद आया, पूछा 'उसका बेड-सोर कैसा है?'

'थो ा-थो ा भर रहा है। माँ ही देखती हैं, मुझसे तो देखा नहीं जाता है। मेरे शरीर के रोंगटे ख` हो जाते हैं। इन छः महीनों में रोहन की हालत और ख़राब हो गई है।' दीवार पर निग़ाहें टिका कर मानो कुछ देख रही हो तान्या। धीरे-धीरे कहती रही, 'देखते-देखते सारा शरीर शिथिल प गया। अपने-आप से कुछ करने की शक्ति ही नहीं है। सारा शरीर मशीनों के जाल से ढक गया है। उसे अहसास भी नहीं होता है कुछ। सुई चुभो दो तो भी चेहरा वैसा का ही वैसा। मुँह तिरछा हो ही गया है और हाथ-पाँव की उँगलियाँ मु ने लगी हैं। मैं सोचती हूँ भगवान ने क्या सोच कर उसे ज़िन्दा रख छो ा है।'

तुषार ने तान्या के कंधे थपथपा कर सांत्वना दी मगर कन्हैया चुप न रहा, 'ऐसी बात न करो दीदी, तुम्हारा पति है। उसी के जीवन के लिए हाथ में लोहा पहनी हो, शांखा पहनी हो, सिन्दूर लगाती हो....'

'तो लो ये शांखा, ये लोहा....नहीं पहनूँगी अब इन्हें। एक मुर्दे में जान फूँकने के लिए इन अंध-विश्वासों का सहारा नहीं लेना है मुझे।' एक ही झटके में बायें हाथ से लोहा, शांखा उतार फेंक दिया कमरे में तान्या ने। झनझनाते लुढ़क कर दोनों अलमारी के नीचे जा घुसे। कन्हैया शंकित दृष्टि से तान्या को देखता पर्दा हटा कर भीतर चला गया।

'तुझे क्या हो गया है? सास से ल कर आई है? ले चाय पी ले....' तुषार ने कप उठा कर बहन की तरफ बढ़ा दिया।

कप लेती हुई तान्या बोली, 'जितनी ही मुझे उस माँस-पिण्ड से घृणा होती जा रही है, उतना ही सास मुझे कहेंगी कि रोहन के पास बैठी रहो, सेवा करो। उसे ख़ुश रखो। अरे ! ख़ुशी क्या, दुःख तक का अहसास वह कर नहीं सकता है। भइया, आई हेट हिम....उसकी आँखों में न जाने कौन-सी शक्ति आ गई है कि वहाँ बैठो तो स्थिर दृष्टि से ऐसे देखने लगता है कि वहाँ बैठना मुश्किल हो जाता है। भीतर तक बेंधने लगती है उसकी दृष्टि। लगता है, भीतर तक चीर कर रख देगी....'

'ऐसा ही होता है रे, भगवान जब अन्य इन्द्रियों को निश्चल कर देता है तब किसी एक इन्द्रिय को बहुत शक्तिशाली बना देता है।'

'मैं भइया वहाँ से कहीं दूर चली जाना चाहती हूँ। उस एटमॉस्फियर में मेरा दम घुटने लगा है।'

'मैं तुम्हारी बात समझता हूँ तनु। जानता हूँ तुम किस तरह से वहाँ रह रही हो।'

'तो कुछ करो न भइया। क्या मैं यहाँ नहीं आकर रह सकती हूँ? भइया, मैं वहाँ वापस जाना नहीं चाहती हूँ।'

'बेशक, क्यों नहीं। तुम जब चाहे यहाँ चली आ सकती हो, रह सकती हो। लेकिन ख़ुद ही सोचो, लोग क्या कहेंगे? लोग कहेंगे कि पति की यह दशा और पत्नी जाकर मायके में बैठी है। बुढ़िया बीमार सास घिसट-घिसट कर बेटे की सेवा कर रही है।'

'कहने दो लोगों को। लोगों का काम ही है दूसरों की टीका-टिप्पणी करना, उनकी हँसी उ ाना, उनके घरों का भेद सबको बताते फिरना....लोगों के डर से मैं उस नरक में वापस जाना नहीं चाहती हूँ। मैं जीना चाहती हूँ भइया। मुझे उस वातावरण से छुटकारा दिलाओ....' वह अपने-आप पर काबू न रख सकी। सुजाता भी आ गई थी। प्यार से ननद के सिर पर हाथ फेरते-फेरते उसे भी रुलाई आ गई। देख तो रही ही थी....देखते-देखते इन छः महीनों में रोहन क्या से क्या हो गया है....जीती-जागती लाश....हाँ, एक ज़िन्दा लाश और कुछ नहीं। तनु ठीक कहती है, उस वातावरण में रहना किसी के लिए भी टॉर्चर है....भला-चंगा आदमी पागल हो जाये। उसे ख़ुद रोहन को देखने जाने के नाम से डर लगता है।

तनु सँभल चुकी थी। चुपचाप सिर झुकाये चाय पी रही थी।

कुछ झिझकते हुए सुजाता ने तुषार से पूछा, 'तनु के लिए चाचाजी से बात करूँ?' चाचाजी अर्थात् सुजाता के चाचाजी। ब ी भारी कंपनी के मालिक हैं।

'कह सकती हो। लेकिन मैं चाहता हूँ कि हमारी बात खाली न जाए। तनु को वह जॉब दें तभी कहो।'

'तनु को उसकी क्वालिफिकेशन के बलबूते पर जॉब मिलेगा, इसे किसी की सिम्पैथी नहीं चाहिए, है न तनु?' सुजाता ने हँस कर तनु की तरफ देखा। तनु ने सुजाता का हाथ पक लिया, 'प्लीज़ भाभी, ट्राई योर बेस्ट।' 'अभी बात करती हूँ. . .' सुजाता उठकर टेलीफोन के पास चली गई।

'तनु, परसों बुलाया है चाचाजी ने। अपने सर्टीफिकेट्स सब ठीक कर लेना।'

'वह तो यहीं मेरी अलमारी में रखे होंगे भाभी। कल आकर देख लूँगी।'

'तू जायेगी कैसे?' तुषार ने पूछा, 'खाना खाया है?'

'नही।'

'सुजाता कन्हैया से कहो हमारा खाना लगाए। खाना खाकर तनु को छो ने जायेंगे।'

सुजाता भीतर चली गई।

तनु उसी नरक में लौट जाने के नाम पर भीतर ही भीतर सिहर उठी, पर जाना तो था ही, जब तक रोहन से छुटकारा नहीं मिलता जाना तो वहीं है।

खाना खाते वक्त माँ भी वहाँ आकर एक तरफ बैठीं पर उन्होंने तनु के ससुराल या रोहन का ज़िक्र नहीं छे ा। जाते वक्त जब तनु कमलादेवी के पास ख ी हुई उन्होंने प्यार से पीठ और सिर पर हाथ फेर दिया। तुषार से बोलीं, 'बहुत रात हो रही है. . . .वे लोग चिन्ता कर रहे होंगे। तनु को पहुँचा आओ। बहू तुम भी साथ चली जाओ।'

बच्चे चिल्ला उठे, 'दादी माँ, हम भी जायेंगे।' 'सुबह उठने में देर हो जाएगी बेटा।' 'प्लीज़ दादी माँ, जाने दो न।' 'अच्छा, जल्दी आना।'

तुषार की कार फाटक से बाहर चली गई पर कमला देवी देर तक बरामदे की कुर्सी पर बैठी रहीं। उनका मन तनु की बात का समर्थन कर रहा था पर संस्कार आ े आ रहे थे। 'लोग क्या कहेंगे' का डर रोम-रोम में समाये ऐसा बैठा था कि उसके ख़िलाफ बगावत करने का साहस नहीं सँजो पा रही थीं। मन और संस्कार की ल ाई में वह दर्शक बनी हुई थीं। दिमाग़ कहता था 'कुछ करो' पर समझ में नहीं आ रहा था कि किसका साथ दें। डरती थीं कि मन का साथ दिया तो लोग कहेंगे 'माँ-बाप के संस्कार ही ऐसे थे तभी न ल की ऐसी निकली।' कोई ये न देखेगा कि पंगु पति के साथ रहते-रहते जीती-जागती ल की एक दिन ज़िन्दा लाश बन जायेगी। क्या फायदा इस तरह की ज़िन्दगी से? ठीक ही तो कहती है तनु - उस वातावरण से उसे निकल आना चाहिए। उम्र ही क्या है उसकी। वह क्यों तबाह हो जाए उस आदमी के लिए जो कभी स्वाभाविक जीवन जी ही नहीं सकेगा? यहाँ भावुकता से नहीं, बुद्धि से काम लेना चाहिए. . . .जानती हैं कमला देवी, लेकिन उनके संस्कार ऐसा करने से रोकते; तब अपने को यह कह कर समझाने लग जातीं कि आजकल की हवा ही ऐसी है। इंसान स्वार्थी हो गया है। केवल अपनी ही बात सोचता है, ब े-छोटे का लिहाज़ करना छो दिया है आज की युवा-पीढ़ी ने। रोग-बीमारी, दुःख-सुख के लिए उनके पास समय नहीं है। आज़ाद जीवन जीने के लिए घर से बाहर कदम निकालना उनका पहला ध्येय है। ऐसे स्वार्थी समाज में उनके जैसे लोगों के विचार तो टकराएँगे ही।

कन्हैया आकर बोला, 'माँ, भीतर चलिए, ठण्ड लग जाएगी।'

'हाँ, चल। तूने खा लिया?'

'आप दूध ले लीजिये तो मैं भी चौका साफ कर दूँ।'

'चल।' उठ कर ख ी हो गईं कमला देवी।

xxxxxxx xxxxxxxxx xxxxxxxxx

नहा-धोकर सुजाता के चाचा के ऑफिस जाने की तैयारी कर रही थी तान्या कि रोहन की माँ राधारानी ने आकर पूछा, 'बहूमाँ, रोहन को स्पंज करा दिया है?'

'नहीं, आप श्याम की मदद से कर लीजिए। मुझे तो अभी बाहर जाना है।'

राधारानी का चेहरा उतर गया। शंकित भाव से बोलीं, 'तुम कहाँ जा रही हो बहूमाँ? मैं अकेले कैसे स्पंज करा सकती हूँ रे?'

'श्याम मदद कर देगा माँ।'

'श्याम के साथ-साथ तुम भी तो करवाती हो बेटी। इतना भारी शरीर हो गया है, मैं सँभाल नहीं पाती हूँ।'

बालों पर कंघी फेरती हुई तान्या बोली, 'तो फिर माँ, आज स्पंज मत करिए, हाथ-मुँह पोंछ दीजिये। कल करवा दूँगी।'

'तुम्हारा जाना बहुत ज़रूरी है क्या? सहमी आवाज़ में पूछा राधरानी ने। बहू से उन्हें डर-सा लगने लगा था आजकल। इतने शांत स्वाभाव की, सदा हँसते रहने वाली तान्या को तीन-चार महीने से न जाने क्या हो गया था . . . बात-बात पर बिग जाती है वह। रोहन के पास तो जाना ही छो दिया है उसने। न उसे साफ-सुथरा करती है, न खिलाखी-पिलाती है, न उससे बात करती है।

राधारानी रो-रोकर हार चुकी हैं, तान्या के आगे हाथ जो चुकी हैं पर जब से डॉक्टरों ने कह दिया है कि रोहन ठीक नहीं होगा, तान्या ने रोहन के हर काम में रुचि लेना छो दिया है। श्याम नौकर ही दिन-भर रोहन के पास रहता है।

तान्या बस एक ही बात बार-बार कहती है कि मैंने नौकरी करने का पक्का इरादा कर लिया है, आप मुझे रोकिये मत। राधारानी ने तान्या को उसके प्रेम की दुहाई दी तो भी तान्या अपने इरादे से हटी नहीं। सास से बहुत रूढ़ता से पेश तो नहीं आई थी पर अपने व्यवहार से जताना शुरू कर दिया था कि उसे अब रोहन में कोई रुचि नहीं है।

राधारानी की तरफ देख कर तान्या बोली, 'एक नौकरी के लिए बात करने जा रही हूँ माँ . . . जल्दी लौटने की कोशिश करूँगी। आप चिन्ता न करें।

'विशाखा ने कहा था दोपहर तक आयेगी।'

'दीदी आयेंगी? ठीक है मैं लौट आऊँगी। अच्छा माँ, चलती हूँ। श्याम बाहर का दरवाज़ा बंद कर लो।' तान्या अपने सर्टीफिकेटों की फाइल और पर्स लेकर बाहर निकल गई तो राधारानी लम्बी साँस छो ती वहाँ से चली आईं। पर रोहन के कमरे मे न जाकर रसोईघर में चली गईं। सोचने लगीं - कैसा प्यार था इन दोनों का? था भी या नहीं? केवल शारीरिक आकर्षण भर तो नहीं था? या रोहन की अच्छी नौकरी, उसका धनी होना - आकर्षक व्यक्तित्व ने तान्या को विवाह-बंधन में बँधने के लिए बाध्य किया था? जैसे ही रोहन बिस्तर से लग गया, डॉक्टर ने रोग को असाध्य घोषित कर दिया - तान्या मिनटों में बदल गई। रोहन की ब ी-ब ी आँखें याद आईं जो रात-दिन दरवाज़े पर टिकी रहती हैं। जानती हैं राधारानी, वो आँखें तान्या को ढूँढती हैं। कुछ कह नहीं सकता है। भावलेश-हीन आँखों से अपलक देखा ही करता है। डॉक्टरों का कहना है कि एक्सीडेन्ट ने उसकी रीढ़ की हड्डी को ही नहीं, दिमाग को भी हमेशा-हमेशा के लिए पंगु कर दिया है। सारे शरीर को लकवा मार गया है।

रोहन की दीदी विशाखा आसनसोल में रहती हैं। पति इंजीनियर हैं, वह स्वयं भी एक कॉलेज में अध्यापिका है। प्रायः भाई को देखने आ जाती है। आजकल ब े दिनों की छुट्टियाँ हैं इसलिए दो दिन के लिए अपनी कार से आ रही थी। राधारानी नहीं चाहती थीं तान्या आज कहीं बाहर जाए पर उसे रोकने की हिम्मत उनमें नहीं थी। डरती थीं कि कहीं कोई अपमानजनक बात न कह बैठे, कहीं उनके इकलौते अस्वस्थ बेटे को अपशब्द न कहे, कहीं उसे बद्दुआ न दे। तान्या चली गई तो राधारानी मन ही मन मनाने लगीं कि उसके लौट आने तक विशाखा न आये। पर भगवान ने आज तक किसी की सुनी है जो राधारानी देवी की बात सुनते? ग्यारह बजते-बजते विशाखा की कार ने आकर उनके दरवाज़े पर हॉर्न बजाया।

कार से उतरते ही माँ को प्रणाम कर विशाखा भाई को देखने गई। बहन को देखकर भी रोहन के चेहरे में कोई अंतर नहीं आया। वही भावविहीन सूनी आँखें - फा े पर्दे की ओर देखता रहा। न उसकी दृष्टि बहन की ओर मु ी न बहन के आने की कोई प्रतिक्रिया हुई। सच तो ये था कि विशाखा का दिल भी रोहन को देख कर घब ाता था। माँ साथ आईं थीं। रोहन के पास जाकर उसके चेहरे पर हाथ फेर कर बोलीं, 'रोहन देख कौन आया है। तेरी दीदी आई है तुझे देखने - बंटी और बबलू भी आये हैं।'

'रहने दो माँ, उसकी चेतना मर चुकी है . . . इसे तो अब ऐसे ही रहना है। तुम अपने दिमाग़ और शरीर को थकाना बंद करो, बस अपना कर्तव्य किये जाओ। जितने दिनों तक इसकी किस्मत में

कष्ट लिखा है भोगेगा।' हाथ बढ़ा कर भाई का हाथ छुआ विशाखा ने - 'इसके नाखून काट देना माँ, बहुत ब े-ब े हो गये हैं।'

'बहूमाँ से तो कई रोज से कह रही हूँ पर उसने तो कमरे में आना ही छो दिया है। रोहन का कोई काम नहीं करती है।'

'ओ हाँ, तान्या है कहाँ?'

'वही, नौकरी का भूत। गई है कहीं अर्जी-वर्जी देने शायद।'

'और कर ही क्या सकती है बेचारी? रोहन का इस तरह से अनिश्चित काल तक प े रहना, तुम सबके लिए एक कष्टकर स्थिति है। जो इस स्थिति से बाहर निकल सकता है उसे ज़रूर निकल जाना चाहिये।'

माँ को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। विशाखा कह रही है ! रोहन की ब ी बहन ! जिसने रोहन को गोद में लेकर खिलाया था - जो रोहन के एक्सीडेंट होने पर उसे कहाँ-कहाँ लेकर नहीं गई, कौन-कौनसा इलाज़ नहीं किया? पानी की तरह पैसा बहाया था विशाखा ने भी - डॉक्टरों की लाइन लगा दी थी। इसी भाई के लिए क्या कुछ नहीं किया था और आज इसी भाई की मृत्यु-कामना कर रही है ! हाँ, अनिश्चित काल तक प े रहने के मतलब क्या हैं? तो क्या विशाखा भी चाहती है कि.... आँसू-भरी धुँधली दृष्टि को उठा कर विशाखा को देखा उन्होंने, 'तू भी रोहन की मृत्यु-कामना कर रही है?'

'तू भी? और कौन कर रहा है, जरा सुनूँ तो?' माँ की बाँह पक कर कमरे से बाहर चली आई।

'बहूमाँ करती है, मैं जानती हूँ। वह मुँह से भले ही न कहे पर रोहन की अवहेलना से साफ पता चलता है कि अब वह रोहन को नहीं चाहती है। रोहन को वह अपनी ज़िन्दगी से अलग कर देना चाहती है। मै सब समझती हूँ। मेरे रोहन को मन ही मन बद्दुआ दे रही हो तुम सब - तभी वह ठीक नहीं हो रहा है।' कहते-कहते फूट-फूटकर रोने लगीं राधारानी।

हाथ पक कर कुर्सी पर बैठा दिया विशाखा ने। खुद पास बैठते हुए बोली, 'देखो माँ, भावुकता छो कर समझ से काम लो। जिसमें सबका भला है वही सोचना शुरू करो। अच्छा, तुम ही बताओ तान्या क्या गलत कर रही है? रोहन नलियों के सहारे खाता-पीता यूँ ही प े-प े संभवतः पूरी ज़िन्दगी जिये पर तान्या क्यों एक असहाय बिस्तर पर प े व्यक्ति को देखते-देखते अधमरी हो जाये? नौकरी-चाकरी करेगी तो उसके पास भी कुछ करने को होगा, बाहर खुली हवा में जायेगी, दसलोगों से मिलेगी-बोलेगी तो उसका दिल हल्का होगा। रोहन से उसे बाँध रखना अन्याय होगा माँ। बहुत छोटी है वह। उसे स्वछन्द प्रसन्न जीवन जीने का हक है माँ।'

'तुझे भी अपने भाई से लगाव नहीं रहा? मैं देख रही हूँ, सब स्वार्थी हो गये हो....तुम लोग रोहन को जीवित देखना नहीं चाहते हो।'

'ऐसा न कहो माँ। रोहन से हमें कोई शिकायत नहीं है....शिकायत मुझे तुमसे है। तुम अपने दृष्टिकोण का दायरा सिको कर छोटा करके बैठ गई हो, तभी सही बात तुमको दिखाई नहीं दे रही है। रोहन की देख-भाल के लिए एक या दो अच्छी नर्स रख देते हैं। दोनों मिल कर चौबीसों घंटे देखेंगी। रही बात तान्या की - उसे अपनी ज़िन्दगी जीने दो। उससे तो तुम्हें ज़्यादा सहानुभूति होनी चाहिये। दो ही साल में उसका पति हमेशा के लिए पंगु हो गया। एक चौबीस साल की ल की की ज़िन्दगी भी तो इसी के साथ-साथ बर्बाद हो गई न? फिर बाल-बच्चे होते तो कोई बंधन होता, वह भी तो नहीं हैं। उसे अपने ढंग से जीने दो तो वह तुम्हारा भी ध्यान रखेगी, रोहन का भी। वह बहुत अच्छी ल की है माँ। उसकी परेशानी को समझो माँ। अपनी नज़र से नहीं उसकी नज़र से ज़रा देखो भविष्य को। तुम्हारी उम्र तो ख़तम हो रही है पर तान्या की तो शुरू ही हुई है.... इतनी कठोर मत बनो माँ।'

आँसू सूख चुके थे राधारानी के। बेटी की बातों का थो ा-थो ा असर हो रहा था उन पर। वो सोच में डूबी बैठी रही पर विशाखा नहीं। उसके बेटे भूखे थे, मालती को बुला कर उसने खाना लगाने को कहा। खुद नहाने चली गई।

एक घंटे बाद तान्या लौटी। विशाखा को देख कर मुस्कुराने लगी। रोहन की दीदी का आना उसे अच्छा लगता है। जितने दिन रहती हैं दुःख के बादलों को आस-पास मँडराने नहीं देती हैं। पैर छूकर सीधी हुई तो हँस कर विशाखा ने आशीर्वाद दिया, 'मनोकामना पूर्ण हो।'

अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा तान्या ने। विशाखा ने हँसते हुए कहा, 'कुछ काम बनने की उम्मीद है कि ले चलूँ अपने साथ तुझे? आसनसोल में बिरला वाले कम्प्यूटर का नया इंस्टीच्यूट खोल रहे हैं, वहीं एप्लाई कर दे। बाकी हम देख लेंगे।'

'दीदी यू आर ग्रेट, पर माँ? माँ तो मार ही डालेंगी।'

'कुछ नहीं करेंगी। रोहन के लिए नर्स रखवाने का निश्चय करके ही आई हूँ इस बार। तुम लोगों का स्वास्थ्य खराब होने लगा है। बस, बहुत हो चुका। अभी मैं डॉक्टर लाहि ी से एपॉइंटमेण्ट लेती हूँ। माँ से मैंने कह दिया है।'

'दीदी तुम्हें आये देर हो गई है?' थूक गटक कर पूछा तान्या ने। उसने बहुत कोशिश की जल्दी लौटने की पर देर हो ही गई।

'तो क्या हुआ? घंटा-डेढ़ घंटा हुआ होगा। ख़ैर, तू ये बता तेरा काम हुआ?'

'कहते तो हैं भाभी के चाचाजी कि रख लेंगे।'

'गुड। अब हाथ-मुँह धो ले, खाना खायें। ब ी भूख लगी है। बबलू, बंटी भी आये हैं।'

'वह तो उस कमरे से आती टी.वी. की आवाज़ ही बता रही है। हमारे घर में टी.वी.तो इनके आने पर ही चलता है वरना माँ रोहन की बीमारी की दुहाई देकर छूने तक नहीं देती हैं।'

'माँ तो पागल हैं....चल, आ जल्दी....।'

खाना खाते वक्त राधारानी आकर बैठ गईं तो विशाखा ने नौकरी वाली बात नहीं छे ी, न ही रोहन का ज़िक्र किया। इधर-उधर की बातें करती रही। तान्या के भाई का, माँ का कुशल-समाचार पूछा, अपने आसनसोल के लेडीज़ क्लब के होली के फंक्श्न की चर्चा की, बच्चों की पढ़ाई की बातें हुई, फिर अचानक माँ की तरफ देख कर विशाखा बोली, 'माँ, चार-पाँच दिन बाद हम लोग राजस्थान घूमने जा रहे हैं। सोचती हूँ तान्या को भी ले जाऊँ....इसका चेन्ज हो जायेगा। बबलू के पापा ने भी कहा है तान्या को लाने....'

'तुम्हारा भी दिमाग़ फिर गया है क्या? भाई की ऐसी हालत और बहूँमाँ चली घूमने? छिः, क्या हो गया है तुम सबकी अक्ल को !

'अक्ल सही-सलामत है तभी तो कह रही हूँ माँ कि तान्या का इस वातावरण से हटना बहुत ज़रूरी है।'

'और मेरा नहीं? मेरा भी तो तुम लोगों की मानसिकता देख-देखकर दम घुट रहा है।' व्यंग्य-भरी आवाज़ में बोल उठी राधारानी। उन्हें यह देख कर आश्चर्य होने लगा था कि सबको तान्या से सहानुभूति है उनसे नहीं। क्यों? क्या रोहन का यह निर्जीव-सा प ा रहना हरदम उन्हें खदे ता नहीं फिर रहा है? क्या रोहन के कमरे में जाते वक्त उनका हृदय काँपता नहीं है? किससे कहें कि रोहन का इस तरह से तिल-तिलकर जीना उन्हें भी मंज़ूर नहीं।

'तुम माँ हो। तुमने उसे जन्म दिया है....तुम्हें कैसे कहूँ कि मेरे साथ चेन्ज के लिए चलो।'

'माँ का कर्तव्य सब कुछ है....पत्नी की ज़िम्मेदारी क्या कुछ नहीं?'

'है क्यों नहीं। पर उसके लिए एक उम्र होती है। विवाह-बंधन कई वर्ष से बँधे-बँधे ऐसा होना चाहिये कि खोले न खुले। मैं तो इनके विवाह-बंधन की गाँठ ही खोल देना चाहती हूँ।' न चाहते हुए भी मन की बात मुँह से निकल ही गई।

विशाखा की बात ने तान्या और राधारानी को चौंका दिया। तान्या ने आश्चर्य से सिहर कर देखा विशाखा को। यही तो वह भी चाहती है। वह भी तो चाहती है मुक्ति। कैसे पता चला दीदी को !

पर राधारानी के बर्दाश्त की हद हो गई। कुर्सी सरका कर गुस्से से लाल-पीली होते हुए बोलीं, 'वाह, क्या बहन है? इतनी ब ी बहन जिसने भाई को गोद में खिलाया है, आज भाई के लिए कैसे नीच विचार प्रकट कर रही है ! शर्म नहीं आ रही है भाई की अमंगल-कामना करते हुए?'

'इसमें भाई की अमंगल-कामना कहाँ है? पर उसकी लम्बी उम्र की कामना करना उसका कष्ट ही बढ़ाना है न माँ? ख़ैर मैं तो चिर-पंगु रोहन के जीवन से तान्या को अलग करने की बात कर रही हूँ माँ।'

'नहीं, ऐसा मैं हरगिज़ नहीं होने दूँगी। जब शादी की थी तब सुख-दुःख में समान रूप से भागीदार बनने की कसम नहीं खाई थी क्या?'

'पर दोनों समान रूप से कहाँ दुःख को शेयर कर रहे हैं? रोहन को बीमारी का दुःख है, तो तान्या को अकेलेपन का, सब कुछ छिन जाने का दुःख है। दोनों प्रकार के दुःखों में फर्क है कि नहीं माँ?'
'मैं तुमसे तर्क नहीं कर रही हूँ पर तुम तान्या को बिगा ो मत, यही कहूँगी। ऐसे ही वह पीछे नहीं है।' राधारानी वहाँ से चली गईं। उन्हें लगा विशाखा की बातों के आगे उनके तर्क टिकेंगे नहीं, वह हार जायेगीं। असल में वह डरती थीं कि कहीं सम्पूर्ण रूप से रोहन का भार उन पर न प जाए।

माँ चली गईं तो विशाखा बोली, 'हताश न हो तान्या, मैं तुम्हारे साथ हूँ। मेरे पति तुम्हारी हर तरह से मदद करेंगे। हम चाहते हैं तुम अतीत को भूल कर नई ज़िन्दगी जिओ। पर पहले एक नौकरी लग जाये - तभी अगला कदम उठाया जायेगा।'

'दीदी....' इससे अधिक तान्या के गले से आवाज़ नहीं निकली।

ठीक है, कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।' तान्या की पीठ थपथपाते हुए विशाखा ने कहा। 'जल्दी कर, झट से एक पिक्चर देख आते हैं। बहुत दिनों से पिक्चर नहीं देखी है।' माहौल को हल्का करते हुए विशाखा बोली।

दो दिन बाद विशाखा लौट गई। तान्या को साथ तो न ले जा सकी पर एक वकील से मिलवाने ज़रूर ले गई। रोहन से कैसे डायवोर्स मिल सकता है? क्या-क्या करना ज़रूरी है यही जानकारी लेने। वकील के मुताबिक ऐसे डायवोर्स जल्दी हो जाते हैं।

तान्या के मुरझाये जीवन में फिर हरियाली नज़र आने लगी। महीने भर बाद सुजाता के चाचाजी ने अपने एक मित्र के ऑफिस में उसे नौकरी दिलवा दी। राधारानी के घोर विरोध के बावजूद तान्या ने ज्वाइन कर लिया। विशाखा ने फोन पर बधाई दी और वकील से मिलने के लिए कहा।

xxxxxxxx xxxxxxxxx xxxxxxxxx

छः साल बीत गये थे।

बहुत कुछ बदल गया था। डायवोर्स के बाद असंतुष्ट कमला देवी के कारण स्वाभिमानी तान्या घर नहीं लौटी। उसने एक फ्लैट किराये पर ले लिया था। विशाखा से उसका रिश्ता और भी मज़बूत हो गया था। तान्या उसकी आभारी थी। बिना उसकी मदद के राधारानी और कमलादेवी डायवोर्स लेने न देतीं। इसके दो साल बाद राधारानी की समझ में आने लगा था कि रोहन जैसे रोगी के साथ चौबीसों घंटे बिताना कितना कठिन है। पुराना नौकर श्याम छो कर चला गया तो उन्होंने विशाखा से कह कर रोहन को अच्छे नर्सिंग-होम में रख दिया। अपने मुँह से कबूल किया कि तान्या ने डायवोर्स लेकर अच्छा ही किया था। मुक्ति का अहसास हुआ तो ज्ञान-चक्षु सक्रिय हो उठे। अच्छे-बुरे की समझ ने उन्हें तनाव-मुक्त कर दिया। विशाखा और तान्या की बातें ठकि लगीं। लोग क्या कहेंगे का डर ही नहीं रहा। निश्चिन्त होकर वह दोनों वक्त बेटे को देखने नर्सिंग-होम जाने लगीं।

हाँ, तो छः साल बाद।

सुबह छः बजे टेलीफोन की घंटी ने तान्या को जगा दिया। आसनसोल से विशाखा का फोन था। बुरी ख़बर थी। पन्द्रह मिनट पहले उसे नर्सिंग-होम से डॉक्टर का फोन मिला था - रोहन अब इस दुनिया में नहीं रहा। क्या तान्या उसका एक उपकार करेगी? रोहन के शव को घर पहुँचा देगी? यह काम माँ कैसे कर सकेंगी। विशाखा फौरन रवाना हो रही है पर पहुँचते-पहुँचते तीन-चार घंटे तो लग ही जायेंगे।

टैक्सी से जाते-जाते तान्या को रोहन से मुलाकात का पहला दिन याद आया। याद आया शादी करने का निश्चय करना, घर वालों का विरोध और फिर शादी।....एक्सीडेण्ट, शादी के दो साल बाद ही एक्सीडेण्ट से पंगु हो गया रोहन....डॉक्टर का जवाब देना और अपने-आप से संघर्ष करते-करते उसका नौकरी करना और डायवोर्स लेना।....भा ा चुका कर जब केबिन में पहुँची तो पर्दा हटाते हुए उसके हाथ काँप उठे। साहस सँजोकर भीतर झाँका - सफेद चादर से ढँकी रोहन की लाश के पास कुर्सी पर बैठी थीं राधारानी, पत्थर की मूर्ति-सी, अपलक, ख़ामोश....सूखी और सूनी आँखों से सफेद चादर को निहारतीं।

पीछे से जाकर राधारानी के कंधे पर हाथ रखा तान्या ने। न हिलीं, न मु कर देखा। कुछ पल और बीत गये। अपना दाहिना हाथ उठा कर तान्या के हाथ पर रख कर बोलीं, 'जानती थी, तुम आओगी। तुम्हारा ही इंतज़ार कर रही थी। ले जाने की व्यवस्था करो। मैं घर जाकर वहाँ सारी तैयारी करती हूँ।'

'माँ....' तान्या बहुत कुछ कहना चाहती थी पर मुँह से आवाज़ ही न निकली।

'मुक्ति मिल गई है रोहन को.... बहुत कष्ट पा रहा था। भगवान से उसकी आत्मा की शांति की प्रार्थना करो, और कुछ मत कहो बेटी.... कुछ मत कहो।' उठ कर ख ी हो गईं राधारानी।

उनके जाने के बाद एम्बुलेन्स इत्यादि की व्यवस्था कर कमरे का सामान समेटती तान्या सोचने लगी, 'माँ में इतनी शक्ति कहाँ से, कैसे आ गई? क्या उसके चले जाने ने माँ के चक्षु उन्मीलित कर दिये? या माँ स्वय ही....

आदमी की आदमीयत....

मधुप शर्मा

आदमी की आदमीयत देखिए,
बाद में फिर क़ाबिलीयत देखिए।
मौसमों की बेरुखी अनुचित नहीं,
जंगलों की आप हालत देखिए।
जेब आधी है तो ग़म मत कीजिए,
आप पहले अपनी सेहत देखिए।
ये भलाई क्या करेंगे देश की,
रहबरों की आप नीयत देखिए।
रात भर करते रहे बदफ़ेलियाँ
दिन में देते हैं नसीहत, देखिए।
थे रहे सिरमौर बनकर वो कभी,
आज है कैसी फ़ज़ीहत देखिए।
ज़हर देने पर जो आमदा रहे,
पूछते हैं वो तबीयत, देखिए।
मुस्कुराहट मुँह पे, बम है बैग मे,
आज के युग की शराफ़त देखिए।
रास्ते में लुट न जाए कारवाँ,
कौन करता है हिफ़ाज़त, देखिए।
वक्त पर पूरी ज़रूरत हो अगर,
इतना होता है ग़नीमत, देखिए।
हैं ज़माने भर के ग़म हमको अज़ीज़,
आ गई किस पर तबीयत देखिए।
पूछिए मत क्यों रहे ख़मोश हम,
वक्त की भी तो नज़ाकत देखिए।
बेहतरी के नाम पर कितना विनाश,
अक़्लमंदों की हिमाक़त देखिए।
बो रहे हैं हर तरफ़ बारूद हम,
होने वाली है क़यामत देखिए।
छीन ली अच्छे-बुरे की भी तमीज़,
वक्त ने की है बग़ावत देखिए।
नुक्ताचीनी दूसरों की छोि ए,
आप अपनी तो हक़ीक़त देखिए।
ऐश में डूबे हुए हैं हम यहाँ,
उनकी सरहद पर शहादत देखिए।

राष्ट्रीय एकता की क ी : हिन्दी

कुमारी कमलिनी श. पशीने

जिस भाषा का गुणगान तिलक, दयानंद, सुब्रह्मण्य भारती, गाँधी, सुभाष, राजर्षि टंडन जैसे देश के अनेक शीर्षस्थ मनीषियों और विचारकों ने राष्ट्रीय एकता के लिए किया था और जिनके हृदय में राष्ट्रभाषा के प्रति अक्षुण्ण अनुराग था तथा जिस भाषा ने रामेश्वरम् से अमरनाथ, द्वारका से कामख्य को एक सूत्र में बाँधा तथा कन्याकुमारी से हिमाचल और सिन्धु समुद्र संगम से मणिपुर की सरहद तक देश की संस्कृति जिस भाषा में प्रवाहमान थी, वही भाषा आज दीनों और हीनों की भाषा हो गई है।

हमारी आज़ादी के प्रतीक तथा राष्ट्रीय सम्प्रभुता के द्योतक राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रगीत की तरह ही हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी भी हमारी आज़ादी की पहचान है। लोक कल्याणकारक भारतीय संस्कृति को भारतीय भाषा में ही परखा जा सकता है। इसलिए लोक कल्याण तथा भारतीय सस्कृति के वैश्विक प्रचार-प्रसार हेतु हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का विश्व-व्यापी होना अत्यंत आवश्यक है। आज हमें हिन्दी को भाषा, संस्कृति, साहित्य-धर्म, कला और दर्शन का महत्व, मानवीय मूल्यों, उच्च आदर्शों, निष्ठापूर्वक आस्थाओं और राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में समझना आवश्यक है।

हिन्दी सम्पूर्ण राष्ट्र की वाणी है। इस भाषा में वे अमरत्व विद्यमान हैं जो भारत ही नहीं सारे विश्व को प्रभावित कर सकते हैं। यही कारण है कि गाँधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ हिन्दी के प्रचार-प्रसार के आंदोलन भी प्रारंभ किए थे। भाषा किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की विशिष्ट पहचान होती है। राष्ट्र का इतिहास, उसकी भावना, सभ्यता और संस्कृति उसकी राष्ट्रभाषा में ही व्यक्त होते हैं। सारे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता यदि किसी एक भाषा में है तो वह हिन्दी है। देवभाषा संस्कृत, जो भारत की लगभग ७०० भाषाओं एवं बोलियों की उद्‌गम है, उनमें केवल हिन्दी भाषा में ही देश की भाषाई एकता तथा राष्ट्रीय एकता बनाये रखने की क्षमता है। डॉ. गणेशदत्त सारस्वत के मतानुसार 'हिन्दी केवल भाषा ही नहीं, राष्ट्रीय एकता की क ी है, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा सार्वभौमिक जीवन-मूल्यों की आधारभूत शक्ति है; भारत की मूल चिन्तनधारा की गति, मति तथा नियति है। राष्ट्रीय प्रतिभा के वृहत्तर सामंजस्य, विराट संयोजन एवं सर्वतोमुखी एकीकरण की सतत स्त्रोतस्विनी है।'

देश को एक सूत्र में बाँधने में हिन्दी का ब ा योगदान है। इस भाषा ने ही उत्तर को दक्षिण से तथा पूरब को पश्चिम से जो ा है। इस भाषा ने राष्ट्रीय जागरण का काम किया है। हिन्दी ने भारत की राष्ट्रीय भावना और भावनात्मक एकता को भी पुष्ट किया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी राष्ट्रीय एकता की अलौकिक आधारशिला ही नहीं बल्कि वह तो जनमानस की भावना एवं हृदयोद्‌गार की अभिव्यक्ति का साधन और श्रेष्ठतम माध्यम भी है। इसमें देश की भावना की अभिव्यक्ति की अदम्य क्षमता और योग्यता है। हिन्दी राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में सहायक है तथा भविष्य में अधिक विकसित एवं पल्लवित होकर अधिक सार्थक और सहायक सिद्ध होगी। जनमानस में राष्ट्रीय चेतना व एकता तथा अखण्डता को सबल बनाने में इसकी भूमिका अतुलनीय अवदान सिद्ध होगी।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में 'राष्ट्रभाषा राष्ट्र की धमनियों में प्रवाहित होने वाली राष्ट्रीयता की जीवन्त रुधिर धारा है। इसके बिना जन-जन का न तो पारस्परिक सम्पर्क संभव है और न एकत्व की भावना को ही प्रश्रय प्राप्त हो सकता है।' राष्ट्रभाषा हिन्दी को आधार बना कर उसके माध्यम से राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता को दृढ़ बनाना परम आवश्यक है। हिन्दी के प्रति अटूट आस्था और विश्वास अभिव्यक्त करना ही सच्ची देश-भक्ति है। राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्र का संगठित और बलशाली बने रहना अकल्पनीय है।

विदेशी भाषा अँग्रेजी को प्रमुख भाषा के रूप में स्वीकार कर लेना अभारतीयता का लक्षण है। राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता के लिए यह वांछनीय है कि भारत का प्रत्येक ज़िम्मेदार नागरिक हिन्दी को व्यवहार में लाने का प्रयास करे तथा भाषागत पच ें और राजनीतिक अखा ें से दूर रहे। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि भाषा का संबंध संस्कृति और संस्कारों से है। हिन्दी देश को जो ने वाली भाषा

है। इसकी सहायता से पूरब से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक लोग आपस में विचार-विनिमय करते रहे हैं। भारत की सभी भाषाएँ हिन्दी की बहनें हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम हिन्दी तथा सभी भारतीय भाषाओं की प्रगति तथा तालमेल के लिए प्रयत्नशील रहें। एम.एम.जैकब के मतानुसार 'भारतीय जनता को एक सूत्र में पिरोए रखने के उद्देश्य से राष्ट्रपिता ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के लिए चुना था।'

राष्ट्रभाषा हिन्दी भारतीयता का प्रतीक है जिसमें सामंजस्य की भावना सर्वत्र परिलक्षित होती है। राष्ट्र की वाणी को मुखरित करने वाली, सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करने वाली, विश्व-बंधुत्व की भावना परिवहित करने वाली, मानवीय मूल्यों के रक्षार्थ सतत संघर्ष करने वाली राष्ट्रभाषा हिन्दी जन-जन के मानस की अभिव्यक्ति है। इसलिए हमारा यह कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व हो जाता है कि हम भारतीय अस्मिता को बनाये रखने के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपना पूरा योगदान दें। राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य राष्ट्रभाषा संबंधी राष्ट्रीय अवधारणा को सार्थक बनाने के लिए देशवासियों का यह कर्तव्य है कि राष्ट्रभाषा की समृद्धि और विकास की दिशा में रचनात्मक भूमिका अपनाएँ ताकि राष्ट्रीय एकता की भावना और अधिक प्रबल हो।

भारत की संसद ने राष्ट्रभाषा के बारे में निर्णय लिया है कि इसे तमाम राज्यों की आम सहमति के आधार पर ही तय किया जाएगा। यह आम सहमति जितनी तेज़ी से बनेगी, भारत की राष्ट्रीय एकता और भारत के जनतंत्र के हित में वह उतनी ही ज़्यादा लाभकारी और उपयोगी सिद्ध होगी।

हिन्दी की प्रगति का आधार

हरिप्रसाद धर्मक विशाल

हिन्दी हमारी प्रगति का आधार है।
यह हमारी खुशियाली का द्वार है।।
इसमें हमारी एकता है, प्यार है।
यही हमारी अखण्डता का द्वार है।।
बहु-भाषा बहु-धर्मों का यह देश है।
हिन्दी का न कहीं किसी से द्वेष है।।
आओ हम सब अपनाएँ इसे प्यार से।
आओ अपनाएँ तन मन से इसे दुलार से।।
अँग्रेज़ी को गले लगाते किस आधार पर।
और हिन्दी से द्वेष करते हो किस बात पर।।
जो अपनी भाषा है उसे गैर बताते हो।
और विदेशी भाषा को गले लगाते हो।।
यह कैसी है बात ब ा अचम्भा है।
ऐसा तो कहीं किसी ने न देखा-जाना है।।
छो ा गुज़री बातों में क्या रखा है।
मन से द्वेष भुला कर हिन्दी हमें अपनाना है।।

लहू के फूल

डा. श्याम सिंह शशि

मेरे देश,
मेरे महान देश,
तेरी रज़त-सी रज में
लोट-लोट कर
मैंने शैशव के
निष्पाप क्षणों को खेला
तेरे पावन पवन में
साँसें लेकर
यौवन के मादक भार को झेला
तेरे अन्न-जल से
शैशव-सुमन
जवानी का
चट्टानी फूल बन गया
रण-भूमि में
बलिदान की धूल बन गया
मेरे देश,
आज मैं
राष्ट्र-मंदिर में
निज यौवन के
ताजे फूल अर्पित करता हूँ
आज़ादी की अर्चना में
अपने लहू के फूल
समर्पित करता हूँ।

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित